विशेषसूचना ॥

यह राधास्वामीजी संवत् १८७५ भादवा बुध ८ को रात को जन्मे थे और संवत् १९३६ के अनुमान में मरगए यह जैसे नाटक में एकही पुरुष कभी स्त्री का भाव दिखलाता और कभी पंडित का और कभी किसी का ऐसेही यह महात्मा भी कभी तो गुरु की महिमा करते हैं और कहते हैं। "गुरु है अगम अपार अनामी" इस से कोई भोला भाला मनुष्य यह विचार करे कि इन्हों ने उस बडे मालिक को गुरु माना होगा परन्तु तुरन्त ही यह कह पड़ते हैं कि "सृष्टिस्रष्टा राधास्वामी-भा० १पृष्ठ ४४" कभी कहतेहैं कि गुरु और मालिक एकही हैं यह इन की लीला है इन्हों ने प्रथम तो गुरुभक्ति का उपदेश किया और गुरुभक्ति कहते २ यह कह बैठे कि गुरु और मालिक एकही हैं और राधास्वामी ही सब के कर्ता हैं इस से यह जाना जाता है कि यह विचारा होगा कि जो हम सहसा ही ऐसा कह बैठें कि हम बडे मालिक हैं तो ऐसा कहने वाले अहंब्रह्म तो बहुत हैं हमारी न चलेगी और गुरुभक्ति का उपदेश करते हुए और गुरु को बड़ा बताते हुए अपने को अपने शिष्यों से बड़ा मना कर बड़ा मालिक कह बैठेंगे तो कोई भी तर्क न करेगा और तुरन्त मान लेगा सो ऐसा ही हुआ कि उन के शिष्य उन की आरती उतारते हैं और चरणामृत प्रसादी लेते हैं—इन की स्त्री अभी जीती है इन की जगह पर अब वक्त के सतगुरु रायसालिकरामजी हैं यह जातिके कायस्थ साहब हैं और यह भी आरती उतराते हैं और पूजा करवाते हैं यह भी जानना चाहिये कि जो कोई ग्रन्थ आरम्भ करता है वह ओं अथवा श्रीगणेशायनमः आदि जिस का

जो इष्ट हो उस का नाम प्रथम लिख कर आरम्भ करते हैं इन का कोई इष्ट न होने से यह अपने ग्रन्थ को पोथी आदि शब्दों से आरम्भ करते है ॥

इन्हो ने कहीं से कुछ और कहीं से कुछ लिया है जैसे रूह का उतरना और चढ़ना मोहम्मदियों के मेराज से और राधास्वामी पदमोक्षस्थान जैनियो से, जैसे जैनियों ने शिवपुरधाम व मोक्षशिला और कबीरपन्थियों ने अनहदनाद और सुर्त माने है वैसेही कहीं की ईंट और कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवा जोडा ऐसेही इन्हों ने भी किया है । यह संतजी कानों को वन्द करने से और घंटे २ तक आंखों से आंख मिलाना और पलक नीचे न करना और कान वन्द करने से जो शब्द होता है उसे सुन कर रूह को चढ़ाने को योग और उस से मालिक की प्राप्ति और तरह २ की आश्चर्य्य की बातें देखने का लालच देते हैं सो सत्य नहीं है केवल धोखा है—इन्हो ने यह बात (मिस्मेरिज्मवालों से ली है) (मिस्मेरिज्म) वह विद्या है जिस को संस्कृत में योगाभ्यास कहते हैं और जिस को सुलभा ने राजा जनक पर किया था और अर्जुन ने प्रतिपक्ष सेना पर वैराट के गोहरण-युद्ध में किया था जिस में द्रोणाचार्य कृपाचार्य भीष्मजी मूर्छित नहीं हुए थे और वाकी सब मूर्छित हो गए थे मिस्मेरिज्म वाले भी आंखों से आंख मिलाकर और मीडियननर्व (Median Nerve) पर अंगुष्ठ और उङ्गलियों को दवाने से मनुष्य को मूर्छित कर देते हैं—और जिस वस्तु को आप जैसा देखते हैं वैसाही दूसरों को भी देखने वाला कर देते हैं—मूर्छित होने का कारण यह है कि शरीर में से (कारवोनि-कएसिडगैस) जो महाविष है निकल कर दूसरे पर पड कर उस को मूर्छित कर देता है इस के सङ्ग में ही मीडियननर्व पर वोझ पड़ने

से भी होता है बहुत से राधास्वामीजी के मतवाले जो रूह को चढ़ाने से दसवां द्वार खोलना और जीव को मूर्छित करना आदि को करामात कहते हैं सो भ्रम है ऐसी क्रिया तो बाजे बाजीगर लोग भी करते हैं :—यह स्वामीजी परम नास्तिक होने से कहते हैं कि

राधास्वामी गिने न ब्रह्मज्ञानरी। राधास्वामी थापें न योगध्यानरी ॥
राधास्वामी माने न रामकृष्णरी। राधास्वामी माने न ब्रह्मा विष्णुरी ॥
राधास्वामी पूजें न शिव गनेशरी। राधास्वामीपूजें न गौर शेषरी ॥
राधास्वामी माने न कर्म धर्मरी। राधास्वामी जप तप जाने भ्रमरी ॥
राधास्वामी माने न तीर्थ व्रतरी। राधास्वामी माने न शास्त्र सम्रृतरी ॥
राधास्वामी माने न सूर चंदरी। राधास्वामी माने न गंग जमनरी ॥

बच० भा० १। ५६ ॥

जब इन्हों ने योग और ध्यान और मालिक को किसीही को नहीं माना है तो सज्जन पुरुष विचार लें कि इन का योग का लालच देना कैसे सत्य होगा इन की सब बातें इन की गप्पें हैं जब ब्रह्म को ही नहीं मानते हैं तो इन का योग किस के साथ होगा।

राधास्वामी मतखण्डन ।

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्वं १र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

अथर्ववेदसंहितायां कांड १० प्रपा० २३ अनुवाक ४ मंत्र १ ॥

(यो भूतं च०) जो परमेश्वर व्यतीत काल और (च) अनेक चकारों से दूसरा जो वर्त्तमान (भव्यं च) और तीसरा जो भविष्यत् काल है इन तीनो कालों में जो कुछ व्यवहार होते हैं उन सब को वह यथावत् जानता है (सर्वंयश्चाधितिष्ठति) तथा जो सब जगत् को अपने विज्ञान से जाता रचता पालता प्रलयकरता और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (स्व १ यस्य च केवलं) जिस का सुख ही केवल स्वरूप है और जो मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देने वाला है (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) ज्येष्ठ अर्थात् सब से बड़ा सब सामर्थ्य संयुक्त ब्रह्म जो परमात्मा है उस को अत्यन्त प्रेम से हमारा नमस्कार हो जो कि सब कालों के ऊपर विराजमान है जिस को लेशमात्र भी दुःख नहीं होता उस आनन्दघन परमेश्वर को हमारा नमस्कार होय ॥

अथ राधास्वामीजी का मत लिखते हैं

यह महात्मा वचनसार भाग १ पृष्ठ १४९ में लिखते हैं कि

नहीं ब्रह्मा नहीं विष्णु महेशा । नहीं ईश्वर परमेश्वर शेशा ॥

राम कृष्ण नहीं दश औतारी । व्यास वशिष्ठ न आदि कुमारी ॥

ऋषि मुनी देवी देव न कोई । तीरथ व्रत धर्म नहीं होई ॥

फिर बचनसार भा० २ दफा ४८ पृष्ठ ७२ में यह लिखते हैं कि ब्रह्मा विष्णु शिव इन का नाशमान् होना तो देहधारी होने से साफ जाहिर है फिर इन पर अक़ीदा करना किस तरह दुरुस्त है वह हुये थे और नाश होगये ।

(समीक्षक) अजी स्वामीजी आप तो योग वशिष्ठादि नवीन आधुनिक वेदान्तियों के ग्रन्थों की बातों में आगये जो आप पढ़े होते तो जानते कि यह तीनो जुदे २ नहीं हैं किन्तु उसी एक बड़े मालिक परमेश्वर के नाम हैं देखिये अथर्व वेद संहिता मे २४—२५ लिखा है कि—

तदग्निराह तदु सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।

सोऽर्यमा स वरुणस् स रुद्रस् स महादेवः ॥

उसी को अग्नि उसी को सोम उसी को बृहस्पति सविता और इन्द्र कहते हैं वही अर्यमा वही वरुण वही रुद्र और वही महादेव है और कैवल्य उपनिषत् में भी लिखा है ।

स ब्रह्मा स विष्णुस्स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट् ।

स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥

अर्थात् वही ब्रह्मा वही विष्णु वही रुद्र वही शिव वही अक्षर वही परम-स्वराट् वही इन्द्र वही कालाग्नि और वही चद्रमा है और मनुजी ने भी कहा है ।

एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।

इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥

अर्थात कोई उस को अग्नि कोई मनु कोई प्रजापति बोलते हैं यह सब नाम परमात्मा के जुदे २ गुणो से जैसे ज्ञानस्वरूप होनेसे अग्नि था। कल्याणस्वरूप होनेसे और दुसरो का कल्याण करने से शिव विशेष करके व्यापक होने से विष्णु दुष्टों को दंड देकर रुलाने से रुद्र और सब से बड़ा प्रकाशमान और ज्ञानयुक्त होने से महादेव पूर्ण ऐश्वर्य वाला होने से इन्द्र और जगत्प्रलय होने पश्चात् कुछ नही रहता और वही रहता है इसलिये उसका नाम शेष और कभी नाश न होने से अक्षर भी उसी को कहते हैं और परम—ईश्वर—परमेश्वर अर्थात् उस बड़े मालिक के कोई शरीर भी नही है किन्तु वेदो में लिखा है कि वह परमात्मा ।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० अ० ४० मं० ८ ॥

अर्थात् जो परमेश्वर (कविः) सब का जाननेवाला (मनीषी) सब के मन का साक्षी (परिभूः) सब के ऊपर विराजमान और (स्वयंभूः) अनादिस्वरूप है जो अपनी प्रजा को अन्तर्यामीरूप से और वेद के द्वारा सब व्यवहारो का उपदेश किया करता है (स पर्यगात्) सो सब में व्यापक (शुक्रम्) अत्यन्त पराक्रमवाला (अकायम्) सब प्रकार के शरीर से रहित (अव्रणम्)कटना और सब रोगो से रहित (अस्नाविरं०) नाडी आदि के बन्धन से पृथक् (शुद्धम्) सब दोषो से अलग और (अपापविद्धम्) सब पापो से न्यारा इत्यादि लक्षणयुक्त परमात्मा है और भी देखिये—

हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हिꣳसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषः ॥ १ य० अ० ३२ मं० ३ ॥

(हिरण्यगर्भ०) अर्थात् जो परमेश्वर सूर्य्यादि तेजवाले लोकों की उत्पत्ति का कारण है और (यस्मान्न०) जो परमेश्वर किसी माता पिता के संयोग से कभी न उत्पन्न हुआ न होता और न होगा और न कभी शरीर धारण करके बालक जवान और वृद्ध होता वही हमारी रक्षा करे और भी देखिये—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

कि (हिरण्य०) जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पहिले वर्तमान था जो इस सब जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से लेके सूर्यपर्यंत सब जगत् को रच के धारण कर रहा है इसलिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की ही हम लोग उपासना करैं और की नहीं और भी लिखा है

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ इत्यादि ।

अर्थात् एक ही देव परमेश्वर सब जगत् में सूक्ष्मता से व्याप्त होकर अदृश्य हो रहा है

मुण्डक उपनिषद् में भी लिखा है कि मं० ६

एतदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद् भूतयोनिं परि-
पश्यन्ति धीराः ॥ मन्त्र ६ ॥ खण्ड १ ॥

(यत् तत्) जो ज्ञानेन्द्रियों से नही जाना जाता (अग्राह्यम्) हाथ पाव आदि से पकडा नही जाता (अगोत्रम्) जिस का कुल कोई नही है (अवर्णम्) जिस में कोई रंग नही वा जो काटा न जाय (अचक्षुश्रोत्रम्) आंख कान जिस के नही परन्तु फिर भी देखता और सुनता है (तत् अपाणिपादम्) वो हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियो से रहित है तो भी सब कुछ करसक्ता है और सर्वगत है (नित्यम्) जो सदा से एकरस है और जिस का कोई कारण नही है (विभुम्) सब प्रकार के पदार्थों में सत्तारूपसे स्थित और सब को अपनी सत्ता से स्थित रखनेवाला (सर्वगतम्) परमाणु और जीवात्मा में भी व्यापक इसी से (सुसूक्ष्मम्) अति सूक्ष्म जिस से परे कोई सूक्ष्म नही (तत्, अव्ययम्) वो अव्यय है जिस में कभी कुछ घटता नही (भूतयोनिम्) उत्पन्न हुए सब वस्तुओ का कारण है उसी से सब उत्पन्न होता है वही सब के माता पिता का भी माता पिता है (धीराः) उस का ध्यानशील विद्वान् लोग (परिपश्यन्ति) भीतरी विचार से आत्मा मन के संयोग से ही साक्षात्ज्ञान करते हैं.

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरोह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरात्परतः परः ॥२॥ मु० २ खं० १ ॥

अर्थ

(सः) वह परोक्ष (पुरुषः) पूर्णव्याप्त परमात्मा (दिव्यः) प्रकाशस्वरूप (हि, अमूर्तः) निश्चय कर सूक्ष्म है (वाह्याभ्यन्तरः) बाहरी और भीतरी सब पदार्थों के साथ वर्तमान है लोक में बाहरी वस्तु कभी भीतरी नहीं होती और न भीतरी बाहर होती है वैसे वो एकदेशी नहीं है (हि, अजः) सब प्रकार की उत्पत्तिसे रहित है (अप्राणः) जीवात्मा के तुल्य प्राण का सम्बन्ध जिस में नहीं (हि, अमनाः) जैसे जीवात्मा मन से विचारता जानता है वैसे परमेश्वर मन के विना ही सब जानता है (शुभ्रः) परमात्मा सदा शुद्ध निर्मल (परतः) इन्द्रिय आदि से परे सूक्ष्म (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति से भी (परः हि) अतिसूक्ष्म ही है किन्तु उस से अधिक सूक्ष्म कोई नहीः—

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाक् स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥
तल० सा० ॥ २ ॥

अर्थ

(यत) जो (श्रोत्रस्य) सुनने के साधन शब्दग्राहक इन्द्रिय कानका (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति देने वा उसकी रक्षा करने वाला होने से श्रोत्र (मनसः) दुःखादि ज्ञान के साधन अन्तःकरण का (मनः) मनन शक्ति देने वा उस की रक्षा करने से मन जो ब्रह्म उस को विद्वान् लोग (वाचः) वाणी का (वाक्) वाणी अर्थात् वाक्यशक्ति देनेवाला कहते हैं अन्यथा (मूक) गूंगा होना संभव है (स, उ) वही परमेश्वर (प्राणस्य) हृदय से ऊपर को निकलने वाले प्राण वायु का (प्राणः) चलानेवाला (चक्षुषः) रूप देखने के साधन चक्षुइन्द्रिय का (चक्षुः) दिखाने वाला है—इसीलिये इन श्रोत्रादि इन्द्रियो को ईश्वरपन से (अतिमुच्य) पृथक् कर के (धीराः) ध्यानशील योगी जन बन्धन से पृथक् होने के कारण (प्रेत्य) ग्रहण किये शरीर को छोड के (अस्मात्) इस (लोकात्) प्रत्यक्ष जन्म से (अमृताः) मरणधर्मरहित (भवन्ति) होजाते हैं—अथवा विद्वान्लोग इस प्रत्यक्ष लोकसे छूट कर—अर्थात् इस वर्त्तमान शरीरको छोड़ के (अमृता०) मुक्त होजाते हैं अब ऊपर कहे हुए प्रमाणों से विचारवान् पुरुष विचार लेंगे कि परमेश्वर निराकार है वा देहधारी जो निराकार ही निश्चय हो चुका तो फिर इन का कहना देहधारी कहा सत्य रहा हां जो यह यो कहते कि ब्रह्मा विष्णु महादेव आदि नाम परमेश्वर के भी है और इन्हीं नाम वाले सृष्टि की आदि में देहधारी भी हुए हैं परमेश्वर का मानना तो ठीक है परन्तु जो

देहधारी हुए हैं वे जन्मे थे और मरगये उनका मानना क्या अवश्य है सो ऐसा भी ठीक नहीं क्योंकि ब्रह्मा वा शिवादिकों ने अच्छे २ शारीरिकसूत्रादि अनेक उपकारक ग्रन्थ रचे हैं तो उपकार करने वालों को भी न मानना आप का धर्म है हमारा नहीं— सत्यशास्त्रों में सर्वत्र परमेश्वर का ऊपर कहे हुए प्रमाणानुकूल वर्णन है उस को कोई भी देहधारी मान कर नाशमान् नहीं मानता और विद्वान् लोगोंने उसी प्रभु को आजतक सृष्टिकर्त्ता माना और जाना है और सदैव से ऐसा ही मानते चले आये हैं परन्तु थोड़े से दिनों से यह खत्री राधास्वामी साहब ही सृष्टिकर्त्ता आप बनबैठे भाई हम तो एक ही सृष्टिकर्त्ता से सदा कांपते हैं यह हमारे जीव को दूसरे कहां से निकल पड़े ये अपने मुंह से आप कहते हैं किः—

राधास्वामी सृष्टस्रष्टा ॥ वच० भा० १ ॥ ४४ ॥

राधास्वामी पुर्ष अपारा ॥ वच० भा० १ ॥ १११ ॥

भला विचारशील पुरुषो ! विचार तो करो जो मनुष्य योग्य होता है वह कभी अपने मुंह से अपनी प्रशंसा कर सक्ता है ?

" हीरा मुख से ना कहै लाख हमारा मोल "

अब परमेश्वर और हजरत राधास्वामी जी के, सज्जनों के निर्णयार्थ जुदे २ गुण दिखाये जाते हैं—

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
१ (शुभ्रः) शुद्ध पवित्र ।	१ हाड़ मांस चाम मूत्र विष्ठा से पूर्णशरीरयुक्त ।
२ (भूतं च आदि) ।	२ सं० १८३८ में जन्मे और सं० १९३६ में मर गये ।
३ (स्वः) केवल सुखस्वरूप ।	३ सुख दुःख दोनों से ग्रस्त ।
४ (सर्वं यश्चाधितिष्ठति) तीनों कालों के भूतप्राणियों के स्वामी ।	४ किसी काल के भूतप्राणियों के भी स्वामी नहीं ।

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
५ जो तीनो कालों में भूतप्राणियों के व्यवहार होते हैं उन का यथावत् जानने वाला ।	५ केवल अपने वर्तमान काल के व्यवहारों को जाननेवाले भूत भविष्यत् काल के अपने वा दूसरो के व्यवहारो को न जानने वाले ।
६ (ज्येष्ठाय) सब से बड़े सर्वसामर्थ्ययुक्त ।	६ अपने से अधिक सामर्थ्यवाले से छोटे और अल्पशक्तिवाले ।
७ (कविः) सब का जानने वाला ।	७ अपने आप को भी न जानने वाले क्योंकि जीव को जानना तो कहां किन्तु स्थूल शरीर को भी भलीप्रकार नहीं जान सक्ते जो कुछ जाना है वह तो जनाने से जाना है आदि में सब को ईश्वर ही ने जनाया है ।
८ (मनीषी) सब के मन को जानने वाला ।	८ दूसरों के मन को न जानने वाले ।
९ (स्वयम्भूः) अनादि ।	९ शरीरसंयुक्त होने से आदि अन्तवाले ।
१० (स पर्य्यगात्) सर्वव्यापक ।	१० केवल शरीर ही में व्यापक बाहर नहीं ।
११ (अकायम्) सब प्रकार के शरीर से रहित ।	११ स्थूल कारण और लिङ्ग तीनों प्रकार के शरीरयुक्त ।

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
१२ (अव्रणम्) कटना और रोगों से रहित ।	१२ शरीर तो उनका कटने वाला परन्तु जीवात्मा नहीं यह रोगों के आधीन ।
१३ (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के बन्धन से पृथक् ।	१३ नाड़ी आदि के बन्धनों से बंधे हुए ।
१४ (शुद्धम्) वात पित्त कफादि दोषों से रहित ।	१४ वात पित कफादि दोषों वाले ।
१५ (अपापविद्धम्) सब पापों से न्यारा।	१५ पापी और पुण्यात्मा अर्थात् कोई काम पुण्य का और कोई पाप का करने वाले ।
१६ (हिरण्यगर्भः) सूर्यादितेज-वाले लोकलोकान्तर का प्रकाश करने वाला और उत्पन्न करने वाला ।	१६ किसी के भी नहीं, अपने शरीर को भी, वा उसका कोई अङ्ग भङ्ग हो जाय तो उसको भी नहीं उत्पन्न करने वाले ।
१७ (यस्मान्न) किसी माता पिता के संयोग से उत्पन्न न हुआ न होता न होगा ।	१७ माता पिता के संयोग से उत्पन्न हुए ।
१८ (भूतयोनिम्) सर्वभूतप्राणियों के उत्पन्न होने के पहिले भी था ।	१८ जिन का राधास्वामी नाम था वे केवल ६७ वर्ष से ही हैं अब मर गये ।

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
१६ (स दाधार पृथिवीम्) पृथिवी से ले के सूर्यादिपर्यन्त सब लोक लोकान्तरों का रचनेवाला धारण करने वाला ।	१६ पृथिवी से ले के सूर्यादिलोक लोकान्तरों में न किसी को रचा न रच सक्ते थे न किसी को धारण किया न कर सक्ते थे ।
२० (अदृश्यम्) ज्ञानेन्द्रियों से भी नहीं जाना जाता ।	२० ज्ञानेन्द्रियों से युक्त ।
२१ (अग्राह्यम्) हाथ पांव आदि से पकड़ा नहीं जाता ।	२१ हाथ पांव आदि से पकड़े जाते थे ।
२२ (अगोत्रम्) उसका कुल कोई नहीं है ।	२२ खत्रीकुल में जन्म लिया ।
२३ (अवर्णम्) काला पीला श्वेत रङ्ग वाला नहीं ।	२३ शरीरधारी होने से काले वा श्वेत रङ्ग वाले थे ।
२४ (अचक्षुः श्रो०) जिस के आंख और कान नहीं परन्तु सब का देखने वा सुनने वाला है ।	२४ यह आंख कान वाले थे ।
२५ (अपाणिपादम्) हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियों से रहित किन्तु हाथ पावों को रचनेवाला और चलने की शक्ति देने वाला है ।	२५ हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियों सहित और यह कठिन रोगादि से बिगड़ जांय तो सुधार न सक्ते थे ।

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
२६ (नित्यम्) सदा से एकरस है और जिस का कारण कोई नहीं है ।	२६ बालक से जवान और जवान से बूढे हुए इन का नैमित्तिक कारण परमेश्वर और उपादान कारण प्रकृति है ।
२७ (विभुम्) सब पदार्थों में सत्तारूप से स्थित और सब को अपनी सत्ता से स्थित रखने वाला ।	२७ अपने शरीर को भी स्थिति की सामर्थ्य न रखने वाले—सामर्थ्य रखते तो अपने शरीर को क्यों भस्म होने देते ।
२८ (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्म इसलिये जीव और परमाणु आदि में भी व्यापक ।	२८ शरीरसहित स्थूल और जीवरूप से सूक्ष्म ।
२९ (अव्ययम्) जिस में कभी कुछ घटता नहीं ।	२९ जिस शरीर का यह नाम है वह क्षण २ में घटनेवाला और बढ़ने वाला ।
३० जितने पदार्थ हैं उन सब का उत्पन्न करने वाला परमात्मा है वह सब के माता पिता का भी माता पिता है ।	३० दूसरे पदार्थ तो क्या किन्तु उन का शरीर भी उन का रचा हुआ नहीं ।
३१ (अभयम्) उस को किसी तरह का भय नहीं होता ।	३१ मित्र का भय भी होता है ।
३२ आत्मा और बुद्धि के सूक्ष्म विचार से जाना जाता है ।	३२ प्रत्यक्ष दीख पड़ते थे क्योंकि यह मल मूत्रवाले शरीर में विद्यमान थे ।

परमेश्वर ।	राधास्वामी ।
३३ (अज) जन्म नहीं लेता ।	३३ जन्म लिया ।
३४ (अमनाः) मन से रहित अर्थात् विना मन विचारता जानता है ।	३४ मनसहित अर्थात् मन से ही जान सक्ते हैं वा विचार सक्ते हैं ।
३५ (श्रोत्रस्य) कान को भी सुनने की शक्ति देने वाला ।	३५ रचे हुए कान और उस को शक्ति दी हुई से सुननेवाले ।
३६ (प्राणस्य) प्राणों को चलने की गति देनेवाला और आप अप्राणी ।	३६ प्राणी हैं और उन के प्राणों को चलने की गति देने वाला परमात्मा है ।

ऐसे ही परमेश्वर के अनेक गुण है ग्रन्थ अधिक होने के भय से विस्तारपूर्वक नही लिखे हैं अब इन थोड़ी सी बातों ही से जिस मनुष्य को थोडी सी भी समझ है वह विचार सक्ता है कि कहा राधास्वामी कहा परमेश्वर कहा सूर्य कहां खद्योत कहा समुद्र कहा विन्दु कहा हिमाचल कहा राई परन्तु वडाही पश्चात्ताप का विषय है कि राधास्वामी जी ने यह न विचारा वर वक्त के सद्गुरु जी भी यह न विचारते हैं कि जिस वाणी से हम गुरु वनकर गुरुभक्ति का उपदेश करते है उस वाणी में जो वाक्यशक्ति है सो हमारी नही है किन्तु उस परमेश्वर की दी हुई है जिस नेत्र से संसार की रचना को निहार रहे हो और सुन्दर रूप देख रहे हो उसको दर्शनशक्ति उस परमात्मा की दी हुई है आप की नहीं जो आप की होती तो रोगादि होने से डाक्टर वा वैद्य से दीन होकर चिकित्सा न कराते और उस की बनाई हुई औषधि आदि न लेते किन्तु आप नई औषधि उत्पन्न कर अपनी चिकित्सा कर लेते = जिस कान से आप अपनी स्तुति के वचन और भजन सुनते हो वह कान आप का वनाया हुआ नही है और उस में जो श्रवणशक्ति है वह भी आप की दी हुई नही है जिस अन्तःकरण और मनसे विचारते हो उस को मननशक्ति उसी परमात्मा ने दी है जिन हाथों और पावों से कार्य करते हो वे उसी के रचे हुए हैं आप के नही हैं जो आपके होते तो रोगादि के आधीन क्यों होते हैं और दुःख क्यो देते हैं जो आप सच्चे हो और सद्गति चाहते हो तो पक्षपात छोड़ कर

विचार लो कि यह पेट जिस को आप नानाप्रकार के अच्छे २ भोजन खिलाते है और उत्तम २ भोजन खिलाने पर भी किसी २ समयपर आप को दर्द कर दुःख देता है कारण क्या है कि वह आप का बनाया हुवा नही है जो आप के आधीन होता यह उसी के आधीन है जिसने उस को रचा है वह नेत्र जिस को नाना प्रकार के रूप दिखा रहे हो और सुन्दर २ स्त्रिया अवलोकन करा रहे हो तो भी रोगग्रस्त हो कर कभी २ आप को सताता ही है आप से डरता नही है कारण क्या है कि वह आप के आधीन नही है यही जिह्वा जिस को नानाप्रकार के रस चखारहे हो आप के वश में नही है आप के वश में होती तो अन्तसमय में कडी हो कर बोलने से बन्द न कर देती ऐसे ही विचार कर देखो तो शरीर का कोई भी अवयव आप का नही है जो कुछ है सो उसी का है आप को उसने पीने को दुग्ध और निर्मल जल दिया खाने को गेहू और भात दिया पहनने के लिये रुई और ऊन दिई नाना प्रकार के फल और शाकादि भोगने को दिये पृथिवी आदि अनेक पदार्थ सुखदायक स्थिति और फिरने को दिये अब विचारो तो सही कि जो हजारों पदार्थ उसी बडे मालिक परमेश्वर के दिये हुवो से सुख उठाते हैं उस को कितना धन्यवाद देना योग्य है और जो इतने सुखदायक पदार्थ उसके दिये हवे भोग कर उस को धन्यवाद नही देते वह कितने कृतघ्नी है—समझवाले मनुष्य ही कहते है कि जो हमारे शरीर में जितने रोम है वे भी जिह्वा बन सकें तो भी उस का धन्यवाद अच्छी तरह से नहीं हो सका अब धन्यवाद देने के स्थान में यह कहते है—

राम जो कर्त्ता तीन लोक का है और उन का पालन और पोखन कर रहा है—ऐसे दुःखदाइ को क्या माने ॥

वचनसार भा० २ द० १८५ पृ० १२५ ॥

क्योंकि उस ने जीव को गर्भवास दिया अन्तर में काम क्रोध लोभ मोह अहंकार और बाहर में माता पिता आदि दुशमन लगा दिये—

हे धार्मिक पुरुषो ! आप लोग विचार करो कि इन की बुद्धि कैसी है यह आप सृष्टिस्रष्टा और पुरुष अपारा बन बैठे थे परन्तु वह सब जगह मौजूद है और अन्तर्यामी हैं उस से कोई पदार्थ वा बात छिपी नही इन में भी अन्तर्यामी होने से इनसे कहलाय लिया कि "रामकर्त्ता तीन लोकों का है पालन और पोखन कर रहा है" अजी राधास्वामी जी कुछ तो विचारा होता भला विना विचारे आप

सृष्टिसृष्टा बन बैठे जिन को थोडी सी भी समझ है वे आपकी बुद्धि को तोल लेंगे — भला राम जो तीन लोक का पालन और पोषण कर रहा है क्या आप का नही कर रहा है क्या आप तीन लोक से बाहर हैं ? बाहर कदाऽपि नही हो सक्ते — आप का पालन और पोषण उसी के रचे हुवे पदार्थों से हो रहा है आपने कोई पदार्थ भी नही रचा है और उसी के रचे हुवे आप मान भी चुकेहो (वचनसार भाग १) जब आप का पालन और पोषण उसी के पदार्थों से और उसी से हो रहा है तो यह आप का कहना कि ऐसे कर्त्ता दुःखदाई को क्या माने ठीक नही परमेश्वर को दुःखदाई बताना यह आ-की बडाई है इस को तो सुनने-से भी हृदय कांपता है संसार में बहुतसे ऐसे पुत्र है जो माता पिता को मारते है गाली देते हैं और कहते हैं कि यह हमारे माता पिता काहेके हैं आपने जो माता पिता को और परमेश्वर को दुश्मन बताया और दुःखदायी कहा तो क्या आश्चर्य की बात है— जो जीव को अहंकार और अन्तःकरण आदि जीव के स्वाभाविक गुण है और जीव के नित्य होने से नित्य हैं दिये हुए नही इस विषय को भली भांति मोक्षविषय में कहे गे यहां इतना कहना विशेष है कि जिन माता पिताओ ने आप को छोटे से बड़ा किया विचारे आप गीले में सोये आप को सूखे में सुलाया जिन्हों ने आप दुःख पाया और आप को सुख दिया जो आप को दुःखी देख कर महादुःखी होते थे जो आप के सुख में अपना सुख मानते थे ऐसे माता पिता को आप का ही धर्म है जो दुश्मन कहते हो और ऐसा ही यह कहते हो कि—

राम कृष्ण नहीं दस ओतारी ॥ वचन० भा० १ पृ० १४४ ॥

राधास्वामी मानेन राम कृष्ण री ॥ व० भा० १ पृ० ५६ ॥

(समीक्षक) भला श्रीकृष्ण महाराज जो उत्तम पुरुष और परमज्ञानी थे वा रामचन्द्र महाराज जो बडे धर्मात्मा और नीतिज्ञ थे जिन्हों ने भगवद्गीता और रामगीता आदि में बडे २ उत्तम उपदेश किये हैं और अपने सदुपदेशों से सहस्रो जीवो का कल्याण किया है ऐसे महात्माओं का न मानना यह आप की ही नीति है धर्मात्माओं की नही यह न मानना आपका इस अभिप्राय से है कि दूसरों को हटाकर आप बनबैठना और यह कहना।

कि "वो पारब्रह्म परमात्मा सतगुरु बन कर उपदेश करता है" ॥ वचन० भा० २ पृ० १६ द० ३१ ॥

सत्पुरुष राधास्वामी को दया आई और वे कृपा कर के संत सतगुरुरूप धर कर संसार में प्रकट हुए ॥

बच. भा. २ पृ. ३८ द. २८ ॥

और

सुरत राधास्वामी पद अव्वल से उतर कर सत्यलोक में ठहरी और यहां से फिर नीचो उतर कर त्रिकुटि आदि स्थानों में उतरती हुई नीचे आई ॥ द० १२ ॥

(समीक्षक) वेदों के प्रमाणों से पूर्व ही सिद्ध कर दिया गया है कि परमात्मा सर्वगत है और आप भी व०भा०२ पृ०१९ द० २१ में मान चुके हैं कि परमात्मा सब जगह मौजूद है तो फिर यह कहना आप का कि सुर्त राधास्वामी पद अव्वल से उतर कर नीचे उतरी और उतरती २ नीचे चली आई मिथ्या हुआ, क्योंकि नीचे चली आई तो फिर ऊपर नही रही ऐसे सब जगह मानना आप का कहा रहा जो सब जगह है उस में उतरना चढना आना जाना नही बन सक्ता क्योंकि जहा आई कहोगे वहा पहिले ही से है दूसरे यह भी कह चुके हैं और प्रमाणो से साबित करचुके हैं कि वह किसी तरह का शरीर धारण नही करता और न किसी माता पिता के सयोग से उत्पन्न होता— और यह भी लिख चुके है कि वह शुद्धस्वरूप है मल मूत्र भरे और हाड़ मास से पूर्ण ऐसे अशुद्ध शरीर में कभी नही आता देखो मनुजो ने कहा है—

अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥
चर्मावनद्धं दुर्गन्धि पूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥
मनु० अ० ६ श्लो० ७६ ॥

अपने आप अवतार बनबैठे बुद्धिमान् लोग आप की बातों में कभी नही आसक्ते क्योंकि जितनी बातें आप ने कही उनका कोई भी प्रमाण नही और प्रमाणशून्य बात का कोई समझदार मनुष्य मान्य नही करता आप ने केवल फारसी शाअरी मोलानारूम और दूसरी जबानो के प्रमाण देकर बाते की है कोई ब्रह्मविद्या के ग्रंथो का प्रमाण देते तो मान्य होता पर हो कहा से आप तो कुछ पढे नही और न किसी से उपदेश लिया (व० भा० १ द० ३—२)

जो ब्रह्मविद्या के कोई ग्रंथ पढे होते तो जानते परमात्मा क्या है आप के ग्रंथो में आप की वाणी और आप का उद्देश पढने से जान पड़ता है कि आपने परमात्मा को नही जाना——यदि आप का मनघड़त कथन भी मान ले कि (हम) परमात्मा ही

राधास्वामी का संत सत्गुरुरूप धारकर प्रकट हुए है तो यह शंका होतीहै कि परमात्मा तो सर्वविद्याओं का कोश है उस ने सब विद्या प्रकाशित की है वह रूप धारण कर प्रकट होता तो ऐसा निरक्षर भट्टाचार्य क्यों प्रकट होता जो रक्षा को रिच्छा, नियम को नेम मुद्रा को मुन्द्रा स्थान को अस्थान अमूल्य को अनमोल जगत् को जक्त उपनिषद् को उपिंषद और सैकडो ऐसे ही अशुद्ध शब्द न बोलता यह सब मनघडत बातें है विचारवानो के मानने योग्य नही और यह भी विचारना चाहिये कि राधास्वामी जी परमात्मा को दुःखदायी और फसाने वाला कह चुके हैं और जब वह फसाने वाला और दुःखदायी ठहरा तो वह प्रकट होकर उद्धार कैसे कर सक्ता है क्योंकि राधास्वामी नाम से और शरीर से संत सत्गुरुरूप धारकर प्रकट हुआ है और चाहे जैसा साहूकार का रूप बनावे उस का चित्त चौरी ही में रहता है ऐसे ही जो दुःखदायी और फसानेवालाहै तो अवश्य सतरूपधारकर भी बहुतो को फसावेगा और दु ख देगा जो कहो संतरूप धारा है इसलिये दुःख नही देगा सो ठीक नही क्योंकि शरीर धारने से क्या होगा शरीर तो जड होने से कुछ भी नही कर सक्ता जो शरीर को (राधास्वामी जी के को) प्रेरणा करने वाला है उस को तो फसाने वाला और दुःखदायक मान चुके हो वह अपने गुण को रूप धरने से कैसे छोडेगा किन्तु उस का जैसा गुण है वही करेगा इस को जान लो कि इन के कथनानुसार तो इन राधास्वामी जी से कुछ भी किसी का उपकार नही होगा जो होगा सो बुरा ही होगा और इसीलिये यह कहते है कि——

राधास्वामी न माने धर्म और कर्म री ॥ ब. भा. १ पृ. ६ ॥

अजी राधास्वामी जी धर्म को जाना तो होता पीछे ही बुरा कहा होता जान कर बुरा समझते और फिर न मानते तो ठीक था धर्म ऐसी वस्तु नही है कि जिस को आप न मानो देखो मनुजी ने धर्मशास्त्र में कहा है श्लोक—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ १ ॥
अ. ६ श्लो. ९२ ॥

दुःख में धीरज रखना, शान्ति, मन का रोकना, चौरी न करना, पवित्रता दोनों प्रकार की बाहर की और भीतर की, इन्द्रियों का रोकना, कठिन बात को भी समझने की आदत करना, वेदविद्या पढना, सत्य कहना और मानना, रोष न करना, ये१० धर्म के लक्षण हैं——

और कर्म को भी जानते और पढ़े हुए होते तो ऐसा न कहते देखो श्रीकृष्ण महाराज ने भगवद्गीता में कहा है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ॥
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ १ ॥
श्लोक ४२ अ० १८ ॥

मन से बुरे काम की इच्छा भी न करना और उस को अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना (दम) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म में चलाना इत्यादि उत्तम कर्म हैं। जो आप सत्य बोलना चोरीत्याग इन्द्रियों का रोकना पवित्ररहना विद्या पढ़ना और पढ़ाना आदि कर्मों को नहीं मानते हो तो झूठ बोलना चोरीकरना व्यभिचारकरना अपवित्ररहना विद्या के पढ़े हुओं को बुरा-बताना क्रोधकरना आदि अच्छा जानते होंगे और मानलिया इसी से आप ये लिखते हैं कि—

"पंडतों के बहकाने में आकर वेद पुराणों के करम करेगा उस का बिगाड़ होगा" ॥ व. भा. २ द. ९१ पृ. ५० ॥

हे न्यायकारी पुरुषो ! आप विचार कीजिये कि वेद पुराण के कर्म सत्य बोलना चोरी न करना व्यभिचार न करना क्रोध न करना आदि कर्म करने से कभी बिगाड़ हो सक्ता है क्या ? कभी नहीं।

हां राधास्वामी जी के मत में ऊपर कही हुई धर्म और कर्म की बातों से बिगाड़ होता होगा इसीलिये इन्हों ने क्रोध और लोभ को उपकार करने वाला माना है यह महात्मा कहते हैं कि—

सन्त क्रोध और लोभ भी करे तो जीव का उपकार है ॥
वच० भा० २ द० ११६ ॥

ये महात्मा, झुण्ड के झुण्ड स्त्रियों के, पास रखते थे और उपदेश करते थे कि

राधास्वामी गाय कर जन्म सुफल कर ले ॥
यही नाम निजनाम है मन अपने धर ले ॥
व० भा० १ पा० २१७ ॥

आरत कर २ गुरु रिझाओ ॥ व० भा० १ पा० २१९ ॥

चरणामृत परसादी लेना । दर्शन पर तन मन सब देना ॥
व० पा० ४२५ पृ० १८ ॥

जात वर्ण भय लज्जा त्यागो मात पिता डर छोड़ गवाओ
भाइ भतीजे का डर मत कर बहु जमाइ इन का डर तज
सास ससुर डर मन से छोड़ो यार आशना सब डरछोड़ो
चरनामृत परशादी लेवे मान मनी तज तन मन देवे
सेवा कर तन मन धन अरपे ॥
व. भा. १ पा. २२० ॥

नर देही छिनभंगी है इस के जोवन पर क्या गरूर करना जैसे पतझड़ के मोसम में दरखतों के पत्ते झड़ जाते हैं ऐसे यह जोबन भी थोड़े से अरसे में जाता रहेगा ॥

इस को मुफत न खोवें और सतगुरु की सेवा में अपना तन मन धन लगावे इस जवानी में जिस ने सतगुरु का खोज कर लिया वोही अकलमंद है ॥
व. भा. २ ह. २१५ पा. १५९ ॥

गुरु मेरा बेग पलंग सवार ।
आज मेरा जागा भाग अपार ॥
श. ५ पा. १५६ ॥

प्रेम जंतरी तार खीचाता ।
सुरत निरत के पैच दिलाता ॥
गढ़ तोड़ा गलहार पिनाता ।
गुरु छबी देख मगन हो जाता ॥
श० ८ पा० १६२ ॥

(समीक्षक) अब न्याय शील पाठकगण उपरोक्त वचनो को ध्यान पूर्वक पढ़कर विचारें कि जहा गुरुजी के ऐसे २ उपदेश होते होंगे वहां साधारण स्त्री पुरुषों पर क्या असर होता होगा धर्म तो यही है कि स्त्री अपने पति सिवाय किसी को भी गुरु न करे स्त्रियो का गुरु अर्थात् पूजनीय केवल पति ही है उसी की सेवा उसी की टहल और उसी के उपदेश से सद्गति होती है दूसरे से कभी नही होगी देखिये धर्मशास्त्र में लिखा है—

" पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् " ।

मिताक्षरा

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने ॥
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥ १ ॥
मनु० अ० ९ श्लोक ॥ ३ ॥

(अर्थ) लडकपन में स्त्रियो की रक्षा बाप और जवानी में पति और बुढ़ापे में पुत्र उस की रक्षा करे, क्योकि स्त्रियें स्वतंत्र होने के योग्य नही हैं स्त्रिये परपुरुष के किञ्चित सयोग से भी कुकर्म कर बैठती हैं व पति और पिता के कुलों को कलंकित कर देती हैं इसलिये इन की सर्वदा समाल करता रहे और इन के चलन पर पूर्ण ध्यान देता रहे ।

सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः ॥
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ १ ॥
मनु० अ० ९ श्लोक ५ ॥

स्त्रियो को अपने पति सिवाय दूसरे पुरुष का मुख देखना भी उचित नही और कही २ राजस्थान की स्त्रिये अपनी नाड़ी तक भी दूसरे डाक्टर लोगो को नही दिखलाती हैं उन का पक्ष यही है कि अपने पति सिवाय दूसरे को हाथ नही पकड़ाती परन्तु उन स्त्रियों की क्या गति होगी जो अपने पति को छोड़कर दूसरे की झूंठ खाती हैं वा सेवा करती हैं स्त्रियो को अपने पति से कभी पृथक् नही रहना चाहिये यहा तक कि पिता के भी संग अकेली न रहे और संभाषण न करे और भाई के संग अकेली न रहे स्त्रियों को ६ बातो से बचना चाहिये—

मद्य पीना १ बुरे का सङ्ग २ पति से दूर रहना ३ इधर उधर घूमना ४ अनुचित सोना ५ दूसरे के घर में रहना ६ इत्यादि मनुस्मृति में कहा है देखिये—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ॥ १ ॥
अ० ९ श्लोक १३ ॥

पति लोगों को उचित है कि अपनी स्त्रियों की सदैव सम्हाल पूरी २ रक्खें और उन को परपुरुष का मुख न देखने दे । क्योंकि इनके सम्हालने से अपना कुल धर्मात्मा और सन्तति की रक्षा होती है,

प्रमाण—

स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च ॥
स्वं च धर्मं प्रयत्नेन भार्यां रक्षन् हि रक्षति ॥ १ ॥
मनु० अ० ९ श्लोक ७ ॥

"राधास्वामी माने न तीरथ व्रत री" ॥
वच० भा० १ पा० ५६ ॥

(समीक्षक) वाह स्वामी जी आप के तो रङ्ग ढङ्ग ही निराले है भला आप को तीर्थ व्रत मालूम नही था कि तीर्थ व्रत किसे कहते है किसी समझदार आदमी से

पक्का होता तो वह आप को चिता देता कि तीर्थ कैसी उत्तम चीज है तीर्थ वह वस्तु है कि जिस को ज़रा सी भी समझ है वह भी कभी नहीं त्याग सक्ता देखिये तीर्थ क्या है वह आप को निवेदन किया जाता है·

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥ १ ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोपस्तीर्थमुच्यते ॥
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥ १ ॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतं ॥
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥ १ ॥

महाभारत ॥

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः ॥
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥१॥

महाभारत ॥

अर्थात् सत्य बोलना क्षमा करना इन्द्रियों का रोकना सब प्राणियो पर दया करना सब से नम्रता रखना पात्र को दान देना विषयासक्त न होना पुरुषार्थ कर के न्याय से प्राप्त में सन्तोष रखना ब्रह्मचर्य रखना मधुर बोलना ज्ञान प्राप्तिकरना विचार कर काम करना श्रेष्ठ बातों को धारण करना श्रेष्ठ कर्मों से दूसरे का उपकार करना आदि सत्यशास्त्रो में तीर्थ कहे हैं और मन की शुद्धि इन से बड़ा तीर्थ है। अब भला विचारो तो सही ऊपर कही हुई बातो में से कौन सी बुरी बात है। जिस को आप नहीं मानते परन्तु आप क्या करें आप को सत्य शास्त्र पढाने वाला न मिला जो सत्य-शास्त्र पढ़ते तो ऐसा न कहते। अब वक्त के सतगुरु जी से यही प्रार्थना है कि वे इन बातों पर पक्षपात छोड कर पूर्ण विचार करें कि जिस से सद्गति हो और असत्य को छोड सत्य का ही आश्रय लेवें· महापुरुष जो होते हैं वे आत्मारूपी नदी जिस में संयमरूपी घाट दया जिस में लहरें सत्यरूपी जिस में जल सुशीलतारूपी जिस के किनारे ऐसी नदी में स्नान करते हैं, ऐसे अर्जुन को उपदेश किया है कि हेअर्जुन तू भी

इसी में स्नान कर जिस से आत्मा शुद्ध होवे। आप भी सत्यशास्त्रों की बातों को मानो जो दया को नहीं मानते वे निर्दयी और हिंसक होते हैं जो शान्ति को नहीं मानते वे क्रोधी और सन्तोष को नहीं मानते वे लालची इन्द्रियों को नहीं रोकते वे कामी व्यभिचारी और सत्य को नहीं मानते वे झूंठे होते हैं उन की उत्तम गति कभी नहीं होगी—आप जो व्रत नहीं मानते सो भी ठीक नहीं क्योंकि व्रत ऐसा नहीं है जिस को कोई न माने जरा सी भी समझ वाला इस को तो उत्तम मानता है देखिये व्रत किस को कहते हैं——

निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः ॥
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः ॥ १ ॥
श्रद्धावान् न्यायभीरुश्च मददम्भविवर्जितः ॥
समः सर्वेषु भूतेषु शिवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ १ ॥
पूर्वं निश्चित्य शास्त्रार्थं यथावत्कर्मकारकः ॥
अवेदनिन्दको धीमान् व्रतकारी भवेत् सदा ॥ १ ॥
वाचस्पति कोश ॥

व्रतं त्रिधाः—
अहिंसा ब्रतचर्या च व्रतं कायिकमुच्यते ॥
वाचिकं सत्यवचनं भूतद्रोहविवर्जनम् ॥ १ ॥
मानसं मनसः शान्तिः सर्वं वैराग्यलक्षणम् ॥ १ ॥
वाचस्पति कोश ॥

अर्थात् अपने वर्णों और आश्रमों के आचरणों में स्थिर रहना मन की शुद्धि रखना लालच न करना सत्य बोलना सब जीवों के उपकार करने में तत्पर रहना वेद और परमेश्वर में श्रद्धा रखना डर करके न्याय से कार्य करना उन्मत्तता और कपट का त्याग, सब प्राणिमात्र में समानप्रीति रखना परमेश्वर की भक्ति रखना जितेन्द्रिय रहना सत्यशास्त्रों में निश्चय बुद्धि रखना यथायोग्य कार्य करना वेदों की निन्दा न करना समझ रखना इत्यादि को व्रत कहते हैं। अब आप इन में से कौन से को नहीं मानते

है संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो इन बातों को नहीं मानता हो बुद्धिमान् और समझदार आदमी सब मानते हैं और कदाचित् कोई मूर्ख नहीं मानता हो। व्रत वह पदार्थ है कि इस से मनुष्य को चतुराई सभ्यता और कीर्त्ति प्राप्त होती है—

यजुर्वेद में लिखा है—

"व्रतेन दीक्षामाप्नोति" यजु॰ अ॰ १९। मं॰ ३०॥

और इस को उत्तम जान कर ही ऐसी प्रार्थना की गई है—

"अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि" यजु॰ अ॰ १। मं॰ ५॥

अर्थात् हे परमात्मन् आप व्रत की रक्षा सर्वदा करनेवाले है और आप की कृपा से व्रत का साधन होता है और आप ही के अनुग्रह से व्रत को धारण करूंगा—

व्रत तीन प्रकार के होते है :—

एक जो शरीर से होता है दूसरा जो वाणी से होता है तीसरा मन से. हिंसा न करना सदाचार रखना ये शारीरिक व्रत हैं सत्य बोलना किसी से द्रोह न करना ये वाणी का व्रत है शान्ति रखना और सब वस्तु में त्याग रखना ये मन का व्रत है अब आप विचार करके देखो तो सही. कि इन में से कौन सी बात बुरी है कि जिस को आप नही मानते—

राधास्वामी जी ने न माना तो उस का कारण यह था कि वो पढ़े हुए न थे और आप जो वक्त के सद्गुरु हो और विद्वान् हो तो आप सत्य असत्य का अवश्य विचार करें—

वा पक्षपात को छोड़ कर सत्य का ग्रहण करें और असत्य का त्याग करें राधास्वामी जी जो कहते हैं कि 'जप तप संजम हु धोखे' सो भी ठीक नही क्योंकि राधास्वामी जी संयम अर्थात् इन्द्रियों को रोकना अच्छा जानते तो संयम को धोखा कभी नही कहते और ऐसे ही तप भी—

"ऋतं तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः" ॥ तैत्ति॰ आरण्य॰ प्रपा॰ १० अनु॰ ८॥

अर्थात् आत्मिकज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियों का रोकना सत्यबोलना वेदादि सत्यशास्त्रो का पढना तप है ये जो इन को भी नहीं मानते थे सो इस में उन का दोष नहीं था उन को तो अविद्या ने घेर लिया था। इति॥

खण्ड दूसरा ॥

राधास्वामी जी कहते हैं कि यह जगत् नाशमान् है और इस का सब असबाब भी नाशमान् है और मिथ्या आदि जानते हैं। वच० भा० २ पृ० १।

(समीक्षक) यह जगत् नाशमान् नहीं किन्तु नित्य है क्योंकि असत् अर्थात् नाशमान् होता तो इस का भाव न होता और जो इस का भाव है तो यह सत्य है।

नाभावे भावयोगश्चेत् ॥ १ ॥

साङ्ख्य० अ० १ सू० ११९ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ॥

गीता० अ० २ श्लोक १६ ॥

और श्रुतियों में भी कहा है कि:—

"सदेव सौम्येदमग्र आसीत्"

साङ्ख्यभाष्ये. अ. १ सू. ३६ का ॥

और साङ्ख्यकार कपिलदेव जी भी कहते हैं कि जगत् सत्य है क्योंकि असत् से सत् की उत्पत्ति कैसे हो सकी है—

"कथमसतः सज्जायेत"

साङ्ख्यभाष्ये. अ. १ सू. ३६ का ॥

और असत् मानना वेद और न्याय से भी विरुद्ध होगा—

"श्रुतिन्यायविरोधाच्च"

अ. १० सू. ३६ साङ्ख्य ॥

और महर्षि गोतम जी ने भी न्यायशास्त्र में कहा है कि—

सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥

अध्या. ४ आ. १ सू. २९ न्याय. ॥

सर्व पञ्चभूतात्मक होने से नित्य हैं क्योंकि पञ्चभूत नित्य हैं और जिस का उपादान कारण नित्य है उसका कार्य भी नित्य है कार्य में कारण के गुण अवश्य होंगे जैसे सुवर्ण के बने हुए आभूषण में सुवर्णत्व हो होगा इसलिये जब कारण नित्य है तो उस का कार्य भी नित्य ही है भलेही तिरोभाव (छिपना) हो जाय परन्तु अभाव किसी प्रकार से नहीं हो सक्ता जैसे एक मिट्टी के ढेले को पीस कर उड़ा दिया जाय तो वह दीखने से छुप जाय परन्तु उस का अभाव नहीं है किन्तु किसी न किसी जगह उस के परमाणु विद्यमान हैं ऐसे ही सब जगत् के पदार्थ चाहे दृष्टि से छिप जांय परन्तु उन का नाश अर्थात् अभाव नही हो सक्ता कार्यरूप जगत् उपादान कारण प्रकृत्यादि में मिल जाते हैं जैसे साङ्ख्य में भी कहा है—

"पूर्वभावत्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः" ॥

अ. १ सू. ७५ ॥

इसलिये जगत् नाशमान् नहीं और जगत् का कारण प्रकृत्यादि भी नित्य होने से नाशमान् नही श्रीकृष्ण महाराज ने भी कहा है—

"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि" ॥

गीता. अ. १३ श्लोक २० ॥

"प्रकृति पुरुषयोर्नित्यत्वम्"

वेदान्तसिद्धान्त ॥

और जो आप की प्रमाणशून्य बातों को मान भी लें तो भी ठीक नही क्योंकि—

"नानित्यता नित्यत्वात्" ॥

न्याय. अ. ४ सू. २६ आ. १ ॥

सब जगत् नाशमान् अर्थात् अनित्य है तो अनित्यता भी अनित्य हुई और अनित्यता अनित्य होने से नित्यता सिद्ध हो गई इस से भी जगत् नित्य है नाशमान् नहीं और जो जगत् को मिथ्या कहते हो सो भी ठीक नहीं क्योंकि जगत् को सत्य सिद्ध कर चुके हैं और जब सत्य सिद्ध हो चुका तो मिथ्या नही और जो युक्ति और प्रमाण किसी से भी नही मानते तो आप भी जगत् में हैं और जगत् मिथ्या ही कहते हो तो आप भी मिथ्या और आप का कहना भी मिथ्या होने से जगत् का मिथ्या कहना भी मिथ्या हुआ इस से भी जगत् सत्य सिद्ध हुआ आप की ये सब बातें कहने मात्र की हैं जो मिथ्या ही मानते हो तो भूख लगती है तब भूख को मिथ्या मान कर भोजन

न करते और ग्रीष्म ऋतु में धूप को मिथ्या समझ कर छाता न लगाते परन्तु आप भूख को भी सत्य समझ चट भोजन करते हैं और धूप को भी ऐसा ही जान कर छाता लगाते हैं तो फिर आपका सब जगत् मिथ्या कहना कहां रहा समझना चाहिये कि यह सब बातें आपकी विपरीत हैं और विपरीत का फल भी विपरीत ही होगा।

अजी राधास्वामी जी आप कल्पित को अर्थ फानी करते हो (वच० भा० १ या० १) यह अर्थ आपने किस से सीखा और जो आप को शब्दों का अर्थ और उच्चारण करने का निश्चय नहीं था तो ऐसे साहस से क्या लाभ उठाते थे भला जो विद्यावान् नहीं है वह शब्दों का अर्थ और उच्चारण सही २ कैसे जान सक्ता है और इसी कारण से आप ने सुर्त शब्द का अर्थ मनअन्तररूह वा जीवात्मा किया है इस शब्द का अर्थ तो—

सुष्ठु रमते इति सुरतः क्रीडायुक्त मैथुन ॥

उणादिकोश. पा. ५ । सू. १४ ॥

राधास्वामी पद को अकह और अनामी भी कहते है क्योंकि यही पद अपार और अनन्त है और अनादि है—भा० २ द० ४।

(समीक्षक) राधास्वामी पद अकह कहना समझ की बात नहीं क्योंकि जब मुख से उच्चारण किया गया है तब लिखा गया है और अनामी भी नहीं होसक्ता क्योंकि जहां राधास्वामी नाम लिख चुके तो फिर बिना नाम का कहना कहां रहा और अनन्त भी नहीं हो सक्ता यह तो र, और आ, स्वर के बीच में अन्तर्गत हो गया और अनादि भी नहीं क्योंकि इस की आदि में र, व्यञ्जन है ऐसे शब्दों को बिना समझे कहना यह आप की भूल की बात है।

बाकी के सब मुकाम इसी से प्रगट हुवे

राधास्वामी सब से ऊंचा मुकाम है॥ वच. भा. २ द. ४॥

(समीक्षक) मुकाम जड़ होने से मुकाम की उत्पत्ति नहीं कर सक्ता क्योंकि घट से घट उत्पन्न नहीं हो सक्ता ऐसा कहना आप की भूल है—

"सबब इस का यह है कि मालिक कुल ने अपनी कुदरत से हर एक स्थान को बतौर अकस यानी छाया निज स्थान के रचा है"। वच० भा० २ या० ८ द० ५।

(समीक्षक) कुदरत वा शक्ति गुण है वा गुणी—जो कहो गुण है तो बिना गुणी के गुण से कोई वस्तु रची नहीं जाती और जो कहो गुणी से रचा है तो गुणी भी स्थानादि उपादान कारण होने से जड़ हो जायगा और स्थानादि मसाले से रचे जाय वह अक्स तुल्य कदापि नहीं हो सक्ता क्योंकि अक्स में स्थूलगुण नहीं है और मुकाम स्थूल होता है।

विशेषसुक्षम और अतिसुक्षम ॥

व. भा. २ द. ९ । ५ । ३ ॥

विशेष ही अति का वाचक है फिर अति कहकर अपने को विद्वान् जनाते हो ।

पहिले ही स्थान पर पहुंचने पर सर्वशक्ति साधु को हासिल हो जाती है । वच. भाग २ पृ. ११ द. ४ ॥

(समीक्षक) जो सर्वशक्तियें साधु को प्राप्त हो जाती हैं तो सर्वशक्ति प्राप्त होने से सब कुछ जान सक्ता है फिर यह कहना कि (आगे का भेद न जाना) सर्वथा मिथ्या हुआ और सर्वशक्तिप्राप्ति भी कहां रही ।

कुदरत दुनयवी और जिसमानी याने मालीनता संसारी और देही की ॥ वच. भाग २ पृ. ११ द. १३ ॥

(समीक्षक) जो आप फारसी और संस्कृत नही पढे हो और कुछ भी नहीं जानते हो तो फिर अपने ताईं फारसी जानने वाला और पण्डित क्यों दिखलाते हो । कुदरत का अर्थ मलीनता आज तक किसी पढे हुए ने तो नहीं किया—और आप भी ऐसा अनर्थ, पढे होते तो न करते जब आप को अक्षरो का और शब्दो का और उन के अर्थों का भी बोध नही है तो कहिये आप की मनघड़त स्थानादि की बातो पर कैसे कोई भरोसा कर सक्ता है समझवाला आदमी तो कभी भरोसा नही करेगा—कुदरत का अर्थ शक्ति है ।

ब्रह्माण्डी मन का अस्थान त्रिकुटि और सहस दल कंवल में है और इसी को ब्रह्म और परम ईश्वर और परमात्मा और खुदा कहते हैं—

(समीक्षक) वाह रे समझ जो परमेश्वर अमना है और प्रमाणों से सिद्ध भी कर चुके हैं उसको यह कहना कि यह मन ही परमेश्वर है इतना तो सोचा होता कि मन जड़ है और संकल्प विकल्प वाला होने से बुरी बातों का भी चिन्तन किया करता है क्या परमेश्वर भी ऐसा करता है और जो ऐसा करता जानते हो तो उस को आप ने जाना ही नही ।

"सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः"

अस्था असली याने सत्तलोक पहुंचेगी ॥

वच. भा. २ । १४ । ८ । ५ ॥

(समीक्षक) वाह कभी सत्यलोक को स्थान असली कभी राधास्वामी पद को ध्रुव स्थान कहते हो जान लिया कि आप ने ध्रुव और असली का अर्थ नहीं जाना जो जानते तो ध्रुव को धुर न बोलते—

ब्रह्मा माहादेव उस अस्थान तक नहीं पोंचे जो माया के घेर बाहर है ॥

(समीक्षक) ब्रह्मा और महादेव एक ही परमेश्वर के नाम हैं और परमेश्वर सर्वजगह है इसलिये आप का यह कहना कि ब्रह्मा और महादेव उस स्थान तक नही पहुंचे ठीक नही—

राधास्वामी आदि और अन्त सब का है ॥
वच. भा. २ द. ११ । १९ । ७ ॥

(समीक्षक) राधास्वामी आदि और सब का अन्त कैसे हो सक्ता है क्योंकि यह थोडे से दिनों पेश्तर थे और अब नही उनका तो अन्त हो गया और आदि भी परन्तु जिन्हों ने उन को देखा वे अब तक मोजूद हैं उन्हों का अन्त नही हुआ फिर सब का अन्त कहना व्यर्थ है समझ की बात नही ।

राधास्वामी स्थान कुल का मुहीत याने सब उस के घेर में हैं और इसी अस्थान की दया और शक्ति काम दे रही है ॥ वच. भा. २ द. ११ । १९ । ९ ॥

(समीक्षक) स्थान एकदेशी होने से सब जगह कदापि नही हो सक्ता और स्थान जड होने से उस में दया भी नही हो सक्ती—

इसी अस्थान से मोज उठी और शब्दरूप होकर नीचे उतरी ॥ वच. भा. २ द. ११ । १८ । १५ ॥

(समीक्षक) क्या राधास्वामी पद समुद्र है जिस से मोज उठी आप तो इसे सन्तों के रहने का स्थान मान चुके हो जो समुद्र होगा तो विचारे सन्त लोग तो कभी डूबते कभी तैरते होगे बडा ही क्लेश उन को तो होता होगा——

जो कहो यह मच्छी की तरह रहते हैं सो भी ठीक नही क्योंकि मच्छी तो जल की अशुद्ध वस्तु खाकर जिया करती है वे भी वहा कुछ अशुद्ध वस्तु खाकर जिया करते होंगे तो फिर चैन कहां रहा——

राधास्वामी पद के नीचे सत्तलोक है और चेतन ही चेतन है ॥ वच. भा. २ द. १२ । २० । ४ ॥

(समीक्षक) लोक जड़ होता है चेतन नहीं—

सन्त मत में सच्चा मालिक और कर्ता इसी अस्थान को कहते हैं आदि शब्द का जहूर इसी अस्थान से हुवा इस वास्ते इस को महानाद कहते हैं और आदिपुरुष भी इसी का नाम है ॥ वच. भा. २ द. १२ । २० । २ ॥

(समीक्षक) कुछ समझ कर बात कही होती लोक जड पदार्थ है और कर्त्ता चेतन है लोक जड़ होने से रचने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सच्चा कर्त्ता और मालिक कभी नहीं हो सक्ता शब्द का जहूर इसी स्थान से हुआ. वह किस ने सुना किस ने देखा और किस ने जाना जो कहो हम ने सुना तो आप की बातें कासी मान्य नहीं हो सक्ता क्योंकि आप को समझ होती तो शब्द जड को आदिपुरुष नहीं कहते।

और इसी मुकाम पर राधास्वामी पद अव्वल से उतर कर ठहरी ॥

(समीक्षक) वह किस ने देखी और यह ऐसी वस्तु नहीं है जो उतर सके और चल सके ऐसा हुआ होगा कि राधास्वामी जी को स्वप्न में शरीर से कोई जन्तु उतरता हुया प्रतीत हुआ होगा और इसलिये ऐसा मान लिया होगा नहीं तो पदवी ऐसी वस्तु नहीं है जो उतर सके और उतरती हुई दीख पड़े।

इसी अस्थान त्रिकुटि को ओंकार कहते हैं ॥
वच. भा. २ द. १४ । २३ । १९ ॥

(समीक्षक) ओंकार शब्द है स्थान नहीं यह अ उ म् तीन अक्षरों से बना है आप जानते तो शब्द को मुकाम न कहते—

इसी के नीचे असथान सहसदल कवल का है और निरंजन ज्योति और शिव आदि इसी मुकाम को कहते हैं ॥
वच. २ द. १५ । २५ । १५ ॥

(समीक्षक) शिव और ज्योति आदि नाम परमेश्वर के हैं प्रमाणों से सिद्ध करचुके है और वह चेतन है वह सहस्रकमल दल स्थान जड कैसे हो सक्ता है—

पहिलाचक्र आंखों के पीछे है और यह मुकाम रूह का है और यहां से नीचे पांच चक्रों में फैली इसी का नाम परमात्मा है ॥ वच. भा. २ द० १९ । ३० ॥

(समीक्षक) सज्जन पुरुषो ! इन की बुद्धि को विचारो भला रूह को यह फैलने वाली मानते हैं और फैलने वाली वस्तु को परमात्मा जो निर्विकार एकरस छेदभेदरहित है बतलाते हैं ।

मजहबी किताबों के पढने का हुकम सिवाय ब्राह्मणों के न था ॥ वच. भा. २ द. २७ । ३५ ॥

(समीक्षक) यह आप का कहना सर्वथा मिथ्या है देखिये वेदों और शास्त्रों में सब के पढने की आज्ञा है ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्याᳬशूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय प्रियो देवानां दक्षिणायैदातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु ॥ १ ॥ यजु० अ० २६ मं० २ ॥

(अर्थ) परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने वाली (वाचम्) ऋग्वेदादि चारो वेदो की वाणी को (आवदानि) उपदेश करता हूं, वैसे ही तुम भी किया करो देखिये परमेश्वर स्वयं कहता है कि हम ने ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियें आदि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदो को पढ पढा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ावें—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ १ ॥
मनु० अ० २ श्लोक १६८ ॥

अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान् ॥
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः ॥ १ ॥
मनु० अ० ६ श्लोक ३७ ॥

अर्थात् जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेदों के पढ़ने को छोड़ कर और दूसरी किताबों के पढ़ने में परिश्रम करता है वह जीवते ही अपने कुटुम्बसहित शूद्र हो जाता है ॥ १ ॥

जो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर और धर्म से पुत्र न उत्पन्न करके और यज्ञ का अनुष्ठान न करके मोक्ष की इच्छा करता है वह नरक में जाता है—

मूर्त्ते ध्यान करने और दृष्टि ठहराने के लिये बनाई ॥
वच. भाग २ द. २६–२५ ॥

(समीक्षक) ध्यान का अर्थ जानते तो ऐसा कभी न कहते कि मूर्त्ति ध्यान करने और दृष्टि ठहराने को बनाई है क्योंकि ध्यान तो कोई विषय सामने नहीं होना है और मूर्त्ति सामने होने से नेत्र इन्द्रिय का विषय है इस लिये मूर्त्ति ध्यान के लिये नहीं ।

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥

रागोपहतिर्ध्यानम् ॥ साङ्ख्य० अध्याय० ३ सू० ३० ॥
वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ॥ साङ्ख्य० अ० ३ सू० ३१ ॥

अर्थात् कोई विषय का सामने न होना ध्यान है । इन्द्रियों का विषयों में रमण न करना ध्यान है और यह जब चित्त की वृत्ति रुकती है तब प्राप्त होता है यह आकारवाली वस्तु में कभी नहीं होसक्ता क्योंकि आकारवाली वस्तु जब सामने होगी तो कभी तो चित्त उस के नेत्रों पर जायगा कभी नासिका पर कभी ललाट पर कभी हाथों पर कभी पैरो पर ऐसे फिरता ही रहेगा स्थिर कभी नहीं हो सकेगा जिन की तीक्ष्ण बुद्धि है वेही ध्यान करसक्ते हैं सब नहीं ध्यान केवल सूक्ष्म वस्तु में होसक्ता है, स्थूल में नहीं पहिले मनुष्य त्रसरेणु को जब सूर्य का प्रकाश हो तब उजालदान में देखे और जब यह प्रकाश तिरोभाव हो जाय (छुपजाय) और त्रसरेणु भी दीखने से रह जाय तब विचारे कि जिस स्थान में बैठा हूं वह त्रसरेणु से भरा हुआ है ऐसे त्रसरेणु पर विचार को दृढ कर और जब त्रसरेणु पर विचार दृढ़ होजाय तब द्वयणुक पर जैसे प्रकाश

और अन्धकार के अणु पर चित्त लगाकर विचार को स्थिर करे तत्पश्चात् सूक्ष्म परमाणु बिजुली आदि पर विचार करे और ये परमाणु ऐसे प्रबल होते है कि जो पानी के कटोरे में बिजुली भरदी जाय तो उस में से कोई वस्तु निकल नही सक्ती और उत्तर दिग्दर्शक यन्त्र को देखिये कि (Magnetic compass) उस की सूई का मुख सदा सर्वदा उत्तर की ही ओर रहता है इस का कारण क्या है विद्वज्जन ही जान सक्ते हैं विना पढे कभी नही, यह वही परमाणु है जो उस सूई को सदा सर्वदा ध्रुव की ओर जिस में चुम्बकशक्ति विद्यमान है खैंचे लिये जाते हैं ये सूक्ष्म परमाणु है विद्या और बुद्धि ही से विचारे जा सक्ते हैं ऐसे ही जब सूक्ष्म परमाणु पर विचार जम जाता है तब अतिसूक्ष्म जो परमात्मा का विषय है उस का विचार कर सक्ता है जो मनुष्य सूक्ष्म पदार्थों पर बुद्धि लगाकर विचार स्थिर कर लेता है वही अतिसूक्ष्म परमात्मा को जान सक्ता है दूसरा नही जब मनुष्य सूक्ष्म पदार्थ परमाणु आदि पर विचार जमाता है तब स्थूल आप ही छूट जाता है इसी का नाम ध्यान है और यह जब ही हो सक्ता है जब मनुष्य काम क्रोध लोभ मोह विषयवासना आदि सब त्याग इन्द्रियो का संयम कर एकान्तदेश जहां विशेष प्रकाश भी न हो वहा बैठकर हृदयाकाश में विचार करता है ग्रन्थ अधिक होने के विचार से इस की विशेष रीतियें नही लिखी, मनुष्य इस रीति से सूक्ष्मविषय का ध्यान करे तो चित्त आप ही एकाग्र हो जाता है परन्तु वह पहिले प्राणायाम कम से कम २१ वार करके चित्त को शुद्ध कर लिया करे जो मनुष्य अपने गुरु का चित्र सामने रख और नेत्र मिला कर श्वास को ऊंचा चढाकर और बल से निकासने को रूह को ऊंचा पहुचाना और राधास्वामी जी में मिलाना कहते है वे आप भी धोखा खाते हैं और दूसरो को भी धोखा देते हैं रूह ऐसी वस्तु नही है जो दूसरी में मिल सके——

उन्हों ने ब्रह्मा विष्णु महादेव को ओछा बताया तो फिर तारीफ किस की करी और सब से बडा किस को ठहराया जो उन्हो ने तारीफ सत्त पुरुष राधास्वामी की करी तो यह वात मानने योग्य है। वच० भाग २ इ० ४८—७०

(समीक्षक) आज तक ऋषि मुनि व्यास गोतम जैमिनि वात्स्यायन कणाद और कपिलदेव जी आदि किसी महात्मा ने ब्रह्मा विष्णु और महादेव को ओछा नही बताया और जो ऐसा बताया कहते हो तो प्रमाण भी दिया होता और न किसी ने राधास्वामी की तारीफ की यह केवल आप की लीला है अपने मुंह से आप बडे बन कर दूसरों को मनाते हो सो ठीक नही हा जुलाहे चमार पेटार्थी लोग जो आप के टुकडे खाते हैं उन में से किसी ने आप के कहने से ओछा बतलाया होगा दूसरो को ओछा वही बताता है जो आप ओछा होता है परमेश्वर को तो ओछा वही बतावेगा जिस की समझ चली गई हो यह तीनो नाम परमेश्वर के ही हैं यह प्रमाणों से पहिले सिद्ध कर चुके है—

वेद शास्त्र और पुरान में ब्रह्मा विष्णु और शिव की ऊंमर लिखी है ॥ वच. भाग २ द. ४९-७२ ॥

(समीक्षक) चारो वेद उपवेद षट् शास्त्र और चारों ब्राह्मणो में जो पुराण हैं उन में कहीं भी नही लिखा कि ब्रह्मादि अवधि वाले है और जो लिखा कहते हो तो प्रमाण दिया होता यह तीनो नाम परमेश्वर के हैं परमेश्वर अनादि होने से अवधि वाला नही हो सक्ता—

सत्तपुरुष राधास्वामी के चरणों में पहुंचाता है ॥

वच. भाग २ द. ११९-१८२ ॥

(समीक्षक) जो राधास्वामी जी को उन के शिष्य परमेश्वर मानते हैं तो उस के चरण नही हो सक्ते क्योंकि वह निराकार है और जो चरण मानते हैं तो देह-धारी होते हैं और वह ब्रह्मा विष्णु आदि को देहधारी मान कर उन को द० ४९ में नाशवान् कह चुके हैं और उन पर अकीदा रखने से भी मना कर चुके है इस लिये राधास्वामी जी के शिष्यों को उन पर निश्चय नहीं रखना चाहिये और उन की वाणी पर भी विश्वास न करना चाहिये क्योंकि वे देहधारी थे जन्मे और मर गये

औतार और देवताओं के मालिक न होने के निसबत तो इस कदर ही कहना काफी है कि ये बाद रचना के कोई द्वापर और कोई त्रेता में प्रगट हुवे तब गोर करना चाहिये कि इनके प्रगट होने से पहिले किसकी पूजा होती थी ॥

वच. भाग २ द. ५१-७६ ॥

(समीक्षक) जो अवतार मानने वालों का अवतारों के मालिक न होने का खण्डन उन का सृष्टि रचना के बाद द्वापर त्रेता में पैदा होने से करते हो तो राधा-स्वामी केवल थोड़े दिनो पहिले पैदा हुए थे और सं० १९३६ पश्चात् मर गये तो इन से पहिले किस की पूजा होती थी, जिस की पहिले पूजा होती थी वह मालिक है राधास्वामी नही क्योंकि राधास्वामी शब्द तो केवल राधास्वामी जी खत्रीही की जबान से सुना है आजतक किसी महात्मा वा भक्त ने भी ऐसा नाम परमेश्वर का नही बताया ऐसा व्याकरणविरुद्ध नाम तो राधास्वामी जी ही कहेंगे——

श्रीकृष्ण महाराज ने भी भागवत व गीता में कहा है कि जो कोई मुझ से मिला चाहे तो जो मेरे प्रेमीजन वा साधु है उन की सेवा वा उन से प्रीति करे व उन की सेवा है सो मेरी ही सेवा है

(समीक्षक) श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा कहा है उस का प्रमाण पता दिया होता और ऐसी प्रमाणशून्य बात को मान भी लें तो भी ठीक नही क्योंकि जैसे एक राजा अपने सेवक की किसी दूसरे राजा से प्रतिष्ठा हुई देख और यह कहे कि हमारे सेवक की क्या प्रतिष्ठा हुई वह हमारी ही हुई है तो यह कहना उस का इस लिये है कि वह अपने सेवकों की भी बडी बडाई और मान्य चाहता है परन्तु उस सेवक का क्या हाल होगा जो अपने वास्ते आप राजा बना कर और ऐसे दयालु कृपालु स्वामी की रियासत में से कपट कर राजा की उस आमदनी में से आप ले लेवे और अपने ही को राजा कहने लगे——आज कल ऐसे मनुष्य जो अपने स्वामी के स्थानापन्न हो कर उस का माल ले लेवें तो ताजरातहिन्द के माफिक तसरुफ बेजा में धरे जाते है राधास्वामी जी वा वक्त के सद् गुरु से भी यही प्रार्थना है कि आप उस बडे मालिक की एवज की पूजा अपनी न करावें नही तो अच्छा न होगा· देखिये श्रीकृष्ण महाराज ने तो यह कहा है——

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १ ॥
गीता. अ. १५ श्लो. १७ ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ॥
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥१॥
गीता. अ. १८ श्लो. ६५ ॥

कि उत्तमपुरुष दूसरा है जिस को कि परमात्मा कहते हैं और वह तीनो लोकों में व्याप्त हो के धारण कर रहा है और सब का स्वामी है हे अर्जुन तू उसी के शरण जा जिस की कृपा से तुझ को क्षमा प्राप्त हो ।

श्रीकृष्ण महाराजने अर्जुन को एक चींटी ओर हो कर कहा है कि यह बहुत बार ब्रह्मा वा इन्द्र हो चुका है व बड़ी २ गति पा चुका है और अब इस जन्म में चींटी हुआ है ॥ वच. भाग १ द. ८ ॥

(समीक्षक) इस का प्रमाण कहां है ऐसी प्रमाणशून्य वार्ता नही करना चाहिये देखो वेदों में इन्द्र और ब्रह्मा ये नाम उस बड़े मालिक के ही है पढ़े होते तो जानते

इन्द्रमित्रमित्यादिश्रुतेः ॥ यो भूतं च भव्यं च इत्यादि ॥

अब उन को चौरासी के चक्र में मानने वाले आप ही प्रकट हुए——

ब्रह्मवित् ब्रह्म एव भवति ॥

वच. भाग २ पृ. १० द. ५८ ॥

(समीक्षक) अर्थात् ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही होता है तो आप के वाक्यानुसार ब्रह्म हो भी गये तो भी चौरासी में ही पडोगे क्योंकि आप तो ब्रह्म को मानते ही नही और मानते हो तो उस को चौरासी बताते हो यह प्रमाण कहां से उधार लिया यह कोई प्रामाणिक ग्रन्थ का प्रमाण नही है कदापि किसी आधुनिक नवीन वेदान्ती से जो अहंब्रह्म कह कर आप ब्रह्म बनबैठे और भीख मागता फिरे वा योगवाशिष्ठ पञ्चदशी सुन्दरदासजी निश्चलदासजी नवीनवेदान्तियो से लिया होगा—

कर्त्ता बड़ा दयाल है जिसने सब रचना पैदा की और मनुष्य को उत्तम देही दी और तरह २ की चीजें और सूरते पैदा की उस को लोग पत्थर का वा धात की मूर्ती या पानी या पीपल आदि में थाप कर पूजते हैं तो मालिक की पैदा की हुई चीजों का खुदा और मालिक समझकर पूजना किस कदर गफलत और नादानी है और उत्तम नर देही पा कर उस को मुफत बरबाद करके अधमगति को पाते हैं—वच. भा. २ द. ३५–४८–४९ ॥

(समीक्षक) मालिक बड़ा दयालु है और सब रचना उसी की रची हुई और मनुष्य को नरदेही दी मानना तो ठीक परन्तु दूसरों की मूर्त्ति पूजा को बुरा बता कर आप की आरती उतराने लगे और चरणामृत अपने पैर का धुला कर देने लगे भला पाषाणादि की मूर्त्ति के चरणामृत से अशुद्ध वस्तु तो पान नही होती है आप अपने पैरो का चरणामृत दे कर लोगो को अशुद्ध वस्तु पान कराते है सो ठीक नही मालिक की बनाई हुई चीजो कोमालिक मानने वाले तो निश्चय से मूर्ख और नादान हैं जो वे

ऐसे न होते तो आप की देह उस की बनाई हुई है उस को क्यों पूजते और चरणामृत क्यों लेते परन्तु नरदेही जो उस कर्त्ता की बनाई हुई है उसे पुजवाने वाला भी तो पापी हुआ था नहीं राधास्वामीजी ने वा वक्त के सत्गुरु जी ने देही उस कर्त्ता से पाई और नौकरी कर के पेट भरते थे सो वह नरदेही मिलने के धन्यवाद देने के स्थान में आप अपने को पुजवाने लगे उन की क्या गति होगी।

सन्तों की और फकीरों की पहिचान यही है कि वे हमेशा इष्ट से सच्चे मालिक का दृढ़ करावेंगे ॥

वच. भा. २ द. ४०—५८ ॥

(समीक्षक) आप ने सच्चे मालिक का कहीं कुछ भी वर्णन नहीं किया और किया हो तो बताओ वा उस का कहीं धन्यवाद किया हो तो बताओ वा उस की कहीं महिमा करी हो तो दिखाओ करो कहा से आप ने परमेश्वर को जाना ही नहीं जो जानते तो अवश्य कुछ न कुछ उस की महिमा करते आप के तो गुरु और मालिक एक ही है ऐसा अपने शिष्यों को कह कर आप ही बन बैठे और अपनी ही सेवा टहल कराने लगे और उस बड़े कर्त्ता को भुला दिया उचित यह था कि उस कर्त्ता को मुख्य मानते और अपने शिष्यों से भी जैसे श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन को उपदेश किया वैसे ही परमेश्वर का उपदेश करते।

राधास्वामी कहते हैं जो (गुरु) अर्थात् हम (क्योंकि इन का तो कोई गुरु नहीं)—

कहैं सो करो अपनी अकल को पेश मत करो ॥

वच. भा. २ द. ४१ ॥

तन मन धन गुरु के अरपण कर दे विचार न कर ॥

वच. भा. २ द. ३२—६२ ॥

सन्तों के वचन को नहीं मानते हो तो चौरासी में पड़ोगे ॥ वच. भा. २ द. ११—२५ ॥

(समीक्षक) वाह जी ! स्वामी जी ! वाह धन लेने की क्या अच्छी युक्ति निकाली जिस से हिया के अन्धे गठडी के पूरे विना विचारे गाठ भेट करदें और विना परिश्रम से धन प्राप्त हो जाय परन्तु यह शंका होती है कि जिन्हो ने आप को तन अर्पण कर दिया है और वह उस से बुरा काम भी करते हैं तो बुरा कर्म का फल पाप

भी आप को ही होता होगा क्योंकि वह तन जो पाप करता है अर्पण होने से आप का है ऐसे ही सैकड़ो मनुष्यो के तन आप के अर्पण हो जाने से जो पाप उन से होते हैं वह सब आप को लगने से आप महापापी होंगे. जो महात्मा होते हैं वे ऐसा उपदेश कभी नही करते किन्तु यही कहते हैं कि सोच समझ कर विचार कर के मान और जो हमारे शुद्ध आचरण है उन को धारण कर और जो बुरे हैं उन को त्याग कर।

आर्षधर्मोपदेशं च वेदशास्त्रविरोधिना ॥
यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ १ ॥
मनु० अ० १२ श्लो० १०६ ॥

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नेतराणि ॥
तैत्तिरीय प्रपा. ७ । अनु. ११ ॥

अर्थात् ऋषि महार्षियो का धर्मोपदेश वेद शास्त्र के विरुद्ध नही है उस को जो दलील से धारण करता है वह धर्म को जानता है और जो ऐसा नही करता है और विना विचारे मान लेता है वह अधर्मी है अब न्यायशील मनुष्य विचार ले कि धर्मात्माओ का उपदेश तो कैसा है और राधास्वामीजी का कैसा।

ब्रह्मा से आदि लेकर जितने देवता हैं राम कृष्ण आदि लेकर जितने अवतार हैं इन सब का दरजा सन्तों से नीचा है सन्त बादशाह हैं वे सब वजीर।

(समीक्षक) देवता किस को कहते हैं पहिले जाना होता और पीछे ऐसा कहा होता क्योंकि देव शब्द का अर्थ—

“विद्वा॒ꣳसो हि देवाः” ॥ शतपथे कां. ३ । अ. ७ ।
ब्रा. ६ । कं. १० ॥

अर्थात् जो धर्मात्मा सत्यवादी विवेकी पुरुष हैं वे देवता है और जो धर्मात्मा सत्यवादी और विवेकी हैं उन को नीचा बताते हो तो पापी झूठे मूर्खों को अच्छा जानते होगे और इसी से तन मन धन अर्पण कराते होगे नहीं तो सन्तों को धन से क्या काम उन को तो इस से त्याग होना चाहिये परन्तु राधास्वामी जी सन्त वा वक्त के सत गुरुजी की विचित्र ही लीला है यह महात्मा अच्छे सजे हुए पलग पर बैठे रहते हैं और स्त्रियों का झुण्ड का झुण्ड पास रखते हैं और अच्छे २ पदार्थ भोजन करते हैं और जिस स्थान में रहते हैं उस को भी सुन्दर २ पदार्थों से सजा रक्खा है भला सन्तों के ऐसे चरित्र होते हैं वे तो एकान्त सेवन करते हैं और जैसा रूखा सूखा टुकड़ा मिल जाय उस को खाकर निर्वाह करते हैं इन की सी तरह विषयासक्त नही होते देखिये सन्तों के तो ये लक्षण हैं—

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु ॥
दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥ १ ॥
शौचं तपस्तितिक्षां च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥ २ ॥
सर्वत्रात्मेश्वरान् वीक्ष्य कैवल्यमनिकेतनम् ॥
विविक्तं शुद्धवसनं सन्तुष्टं येन केनचित् ॥ ३ ॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ॥
वाचस्पति कोश ॥

(अर्थ) सांसारिक पदार्थों से मन को हटावे सत् पुरुषों का सङ्ग करे और जीवों का यथायोग्य सत्कार करे दया मित्रता नम्रता इन को धारण करे ॥ १ ॥ पठन पाठन सरलता पवित्रता तप क्षमा मौन ब्रह्मचर्य हिंसा का त्याग सुख दुःख में समानता ॥ २ ॥ जीवात्मा और परमात्मा को सब जगह देखना एकाकी रहना घर न बांधना वैराग्य शुद्धवस्त्र जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष होवे अन्नादि पदार्थ सब को बांट कर खावे ।

कर्मी और ज्ञानी सन्तों के वचन को नहीं मानेंगे वह तो बुद्धि के विलास वाले हैं वेद शास्त्र और व्रत के कैदी हैं ॥ वच. भा. २ द. २१–४०–१६ ॥

(समीक्षक) कर्मी और ज्ञानी सन्तों को नही मानते यह कैसे जाना और अच्छे काम करने वाले वे अवश्य जो सच्चे सन्त होते हैं उन को मानते हैं परन्तु वे निरक्षर मूर्खों को जिन को शुद्ध अशुद्ध अक्षर का भी बोध नही, नहीं मानते जो विद्वान् और वेद शास्त्र के आनन्द को भोगने वाले हैं वे मूर्खों की गप्पों में कभी नहीं फसेंगे आप वेद शास्त्र के आनन्द को जानते तो ऐसा कभी नही कहते परन्तु आप तो विचारे पढ़े ही नही—कोई अंधे से पूछे कि प्रकाश का क्या आनन्द है तो वह क्या जाने उस ने देखा हो तो कहै ।

जीव तमाशा देखने आया पिता की अंगुली छुटगई न तमाशा का आनन्द रहा न पिता मिलता है ॥
वच. भा. २ द. २३–४२ ॥

(समीक्षक) जो परमेश्वर का स्वरूप जानते तो ऐसा कभी नही कहते वह सर्वगत है कभी अलग नही हो सक्ता।

शब्द का रस चाहे तो एक वक्त खानाखाय ॥

वच. भा. २ द. २३-४३-१९ ॥

(समीक्षक) शब्द शीरनी नही है सो चखने में आये और उस में रस हो-न पढने की ऐसी ही बातें होती है।

सिवाय सतगुर के और सब जड़ है ॥

वच. भा. २ द. २५-४४-११ ॥

(समीक्षक) सब में तो ईश्वर माता पिता भी आगये और ये चैतन्य हैं चैतन्य को जड मानना समझ की बात नही जो चैतन्य को जड और जड को चैतन्य मानता है वह मूर्ख है।

अन्तकाल का कोई संगी नहीं है मरघट तक संग जाते है परंतु सतगुर सदा संग रहते हैं ॥

वच. भा. २ द. २६—५० ॥

(समीक्षक) यह भी कहना मिथ्या है क्योंकि जब २ चेले मरे तब २ राधास्वामी जी सङ्ग न फुके जो सङ्ग फुक जाते तो जानते कि सङ्गरहे, चेले फुक गये और राधास्वामी जी बैठे रहे पलङ्ग पर मोज उडाते रहे

पण्डित से जीव का उद्धार नहीं होगा केवल संत से होगा ॥ वच. भा. २ द. ३३-६५-९ ॥

(समीक्षक) पण्डित से उद्धार नही होगा तो मूर्ख से कैसे होगा——सन्त जो मूर्ख होगा उस से उद्धार किसी का भी कभी न होगा

बाजे जीव सतगुर से कहते हैं कि जो तुम सतगुर पूरे हो तो हम तिनका को तोड़ देते हैं उस को जोड़ दो तो सतगुर फरमाते हैं कि जिस को तुम ने ब्रह्म माना है उस-

से तिनका टूटा हुआ जुड़ावो जो वह जोड़ देगा तो हम भी जोड़ देंगे ॥ वच. भा. २ द. ४१-७९ ॥

(समीक्षक) तिनके जोडना निरर्थक काम है परमेश्वर ऐसे काम नही करता और हम आप से भी नहीं कहते परन्तु परमेश्वर बडे २ काम, रचना पालन नियन्तादि और चन्द्र सूर्यादि की उत्पत्ति करनेवाला है जो आप सत्गुरु और ब्रह्म एक ही बनते हो तो आप ने किस को रचा अपने को तो मोत से बचाया होता.

जो गुर कहे सो करो अपनी अकल को पैदा मत करो॥
वच. भा. २ द. ४१-८०-१७ ॥

(समीक्षक) जो गुरु अच्छी बात कहे सो तो करना ठीक परन्तु बुरी बात कहे वह भी करना चाहिये क्या ? जो विना विचारे करेगा वह पछतावेगा ।

पोथी पढकर ज्ञानी हो गये और जीव जब उन के पास जाता है उस को ज्ञान का उपदेश करते है यह नही जानते कि कलयुग में कोई जीव ज्ञान का अधिकारी नही है इस से मालुम हुआ कि वे अन्धे हैं ।

(समीक्षक) जो पढे हुए अन्धे हुए तो विना पढे सूजते यह वही बात है कि अन्धे को नेत्रवाला और नेत्रवाले को अन्धा कहना——कलियुग में कोई ज्ञान का अधिकारी नही है तो राधास्वामीजी भी कलियुग में उत्पन्न हुए हैं वे भी अज्ञानी होगे इसलिये अज्ञानियो की बात मानना नही चाहिये——

साध के संग से पाव घड़ी में कोट जनम के पाप कट-जाते हैं ॥

(समीक्षक) कोट जन्म के पाप साधुसङ्ग से कट जाते हैं तो इस जन्म के तो काहे को रहते होगे परन्तु ऐसा नही है सैकडो साधु राधास्वामीजी के सङ्ग से दुःखी होकर पुकारते हैं और पापकर्म का फल भोग रहे हैं फिर इन का कहना सचा कहा रहा-

मूर्त पूजा और नियम और कर्मकाण्ड और ब्रह्मज्ञान के झगड़ों में पड़ गया तो नरदेही भी हात से गई ॥
वच. भा. २ द. ४ प. ८९-१५ ॥

(समीक्षक) मूर्त्तिपूजनविषयपर पहिले लिख चुके हैं और जो (ब्रह्मज्ञान को झगड़ा) कहते हो इसीलिये पलङ्ग पर बैठे और स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड पास रखते होंगे ब्रह्मज्ञानी होना आप का भाग कहा वह तो विषयों का त्याग कर मोक्ष का भागी होता है और आप जो कर्म करने से नरदेही हाथ से गई कहते हो इस से तो पाया जाता है कि आप कुछ कर्म नहीं करते होंगे और कर्महीन होंगे परन्तु ऐसा भी नहीं है क्योंकि आप जो अपनी पूजा कराते हो सो भी तो कर्म है अपनी पूजा करवाना छोड़ो तब कर्महीन हो सक्ते हो और जो पूजा करवाते रहे तो कर्म में प्रवृत्त होने से आप के मतानुकूल आप की नरदेही भी व्यर्थ जायगी।

जो मालिक की पहिचान है वही गुरु की ॥

व. भा. २ द. प. ९२-१७ ॥

(समीक्षक) मालिक की पहिचान तो कार्यरूप जगत् और उस की रचीहुई वस्तु शेषवत् प्रमाण होने से होती है आप ने क्या रचा जिससे आप की पहिचान हो—

संतों के मत में जीव का और मालिक का अंसाअंसी-भाव माना है—वच. भा. २ द. ५६-१०२ ॥

(समीक्षक) पहिले वेदमंत्रों से सिद्ध कर चुके है कि परमेश्वर के टुकड़े अर्थात् अंश नहीं हो सक्ते यह बात तो पढ़े होते तो जानते और जो आप का कहना भी मान-लिया जाय तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो परमेश्वर के टुकड़े होने लगे तो दो अरब के लगभग तो जीव मनुष्ययोनी में हैं और असंख्य जीव दूसरी योनी में हैं तो असंख्य टुकड़े होने से घट जायगा और शेष कुछ भी न रहा।

संसार में चाहे कपट से वर्ते पर सतगुर के संग निष्-कपट होकर वर्तना चाहिये ॥

वच. भा. ५९-१०८-१३ ॥

(समीक्षक) जो कपट करने की आज्ञा देता है वह आप भी कपटी होता है आप को ऐसा उपदेश करना योग्य न था केवल सतगुरु के साथ ही निष्कपट होकर वर्तना नहीं चाहिये किन्तु सब के साथ निष्कपट होकर वर्तना चाहिये ऐसा उपदेश करना था—

मुरशद का खुदा दाना है और मुरीद का खुदा नादाना ॥

वच. भा. २ द. ७९-१४० ॥

(समीक्षक) मुरशद का हो चाहे मुरीद का हो खुदा सब का एक है परन्तु नादान खुदा आप से सुना खुदा को नादान कहने वाले आप प्रकट हुए जो कोई मुसलमान ऐसा सुनेगा तो आप की खबर लेगा——

इस जीव के सब बैरी हैं ॥

वच. भा. २ द. १५४–३२ ॥

(समीक्षक) सब में तो परमेश्वर माता पिता और वक्त के सतगुरु जी भी आगये जो पालता है और जिन्हो ने बड़े २ दुःख सहकर आप को पाला उन को वैरी कहना यह आप की सभ्यता है हां वक्त के सतगुरु तो निःसन्देह जीव के वैरी है क्योंकि यह आप इस उपदेश को मानते है और दूसरो को ऐसा उपदेश कर उन के बूढ़े माता पिता की सेवा छुडाते होंगे·

ब्रह्मा विष्णु महादेव और औतार और देवता और पीर पैगम्बर और औलिया आप ही निगुरे है और न चौरासी के चक्कर से आप बचे और न दुसरों को बचा सक्ते हैं क्योंकि इन को सतगुर नहीं मिला ॥

वच. भाग २ द. १५६–९६ ॥

(समीक्षक) ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीनों नाम एक ही परमात्मा के हे प्रमाणो से सिद्ध कर चुके हैं परमेश्वर को निगुरा बताना और उस को चौरासी में बताना यह आप की बुद्धि का फेर है जैसे पीलिये के रोगी को पीला ही पीला दीखपडता है ऐसे ही आप का कथन है जो मनुष्य परमेश्वर को निगुरा बताता है और चौरासी में बताता है वह आप चौरासी में क्या किन्तु चौरासीलाख में पडे तो क्या आश्चर्य है राधास्वामी जी निगुरे थे वे तो अवश्य उन के कथनानुसार चौरासी में पडे होंगे· वच· भा· १ द· २—२।

और निश्चय किसी को भी न बचा सकेंगे किन्तु सैकडों को परमेश्वर से विमुख कराकर चौरासी में पटके होंगे——

ब्रह्मा जो वेद का कर्ता है वही चौरासी के चक्कर से नहीं निकस सका जिस ने विद्या पढने में जन्म गुमाया है वह कैसे बच सक्ते हैं. वच. भा. २ द. १७७ ॥

(समीक्षक) ब्रह्मा वेद का कर्त्ता नहीं है किन्तु ब्रह्मा ने अग्नि आदित्यादि ऋषियों से वेद पढ़े हैं आप की सब बातें मिथ्या हैं देखिये·

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः साम लक्षणम् ॥ १ ॥
मनु. अ. १ श्लो. २३ ॥

ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ॥
वाग्भट्ट अ. १ सूत्रस्थान. श्लो. २३ ॥

ब्रह्मा जी जो महर्षि बड़े महात्मा और ज्ञानी सृष्टि की आदि में हुए हैं उन को आप ने कैसे जाना कि वह चौरासी में है ऐसी प्रमाणशून्य बातों को कोई समझवाला तो नहीं मानता मूर्ख भले ही मान ले और जो आप विद्या पढ़े हुओं को चौरासी से न बचने वाले कहते हो सोभी ठीक नहीं विद्या पढ़े हुए चौरासी से नहीं बच सकेंगे तो मूर्ख कैसे बचेंगे आप ने विद्या के आनन्द को जाना नहीं और जानें कहां से आप पढ़े ही नहीं जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान और आनन्द नहीं हो सक्ता ऐसे ही मूर्ख को विद्या का आनन्द प्राप्त नहीं हो सक्ता विद्या ही से जीव मोक्ष को प्राप्त हो सक्ता है देखिये महर्षि कपिलदेव जी ने कहा है·

ज्ञानान् मुक्तिः ॥ साङ्ख्य. अ. ३ सूत्र २३ ॥
ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ॥ श्रुतेः ॥

परन्तु नेत्रवान् को चाहिये कि अन्धे की बात पर विश्वास न करें और कहा भी है——

नान्धादृष्ट्याचक्षुष्मतामनुपलम्भः ॥
साङ्ख्य. अ. १ सूत्र १५६ ॥

जो यह महात्मा विद्या को जानते तो विद्या पढ़ने को जन्म वृथा गुमाना और चौरासी में न भटकाते, देखिये विद्या कैसी है——

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नमन्तर्धनम् ।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ॥

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् ।
विद्या राजसु पूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥१॥
भर्तृहरि—नीतिशतक ॥

हर्त्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्णाति यत्सर्वदा ।
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं परां ॥
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनम् ॥१॥
भर्तृहरि—नीतिशतक ॥

(अर्थ) विद्या आदमी का बडा रूप है छिपा हुआ धन है विद्या ही भोग यश और सुख करनेवाली है विद्या गुरु की भी गुरु है परदेश में विद्या ही परमदेवता है और विद्या ही राजा लोगों में पूजी जाती है धन नही पूजा जाता यह चोर को नही दीख पडती और सदा सुख को बढ़ाती है और वस्तु तो देनेसे घटती है परन्तु यह देने से बढ़ती है और कभी भी इस का नाश नही होता इस लिये विद्या के बराबर इस जगत् में कौन है·

अब सज्जनपुरुष विचार करें कि जो मनुष्य विद्या जैसी उत्तमवस्तु को बुरी बतावे उस की बुद्धि कैसी है।

जिसको सच्चीप्रतीत है सतगुर के औगुण नहीं देखता ॥
वच. भा. २ द. १८७—१२७ ॥

(समीक्षक) जिस गुरु में मिथ्या बोलना कपट करना छल करना आदि अवगुण हो उस के लिये न देखने की धमकी देना ऐसी बात है जिस से लोग झासे में आ कर परीक्षा न कर सकें।

इश्वर को सर्वव्यापक बताते हैं फिर उस के सर्वव्यापक होने से क्या फायदा॥ वच. भा. २ द. १८८—१२७॥

(समीक्षक) जो परमेश्वर को सब जगह जानते है वे उस से डरकर बुरा काम कहीं भी नही करते और जो सतगुरु को ही परमेश्वर मानते है वे जहा सतगुरु नही है उस के न होने से बुरा काम भी कर बैठते हैं।

नरदेही उनकी सुफल है कि सतगुर की सेवा याने दर्शनों के वास्ते चलने से पांव पवित्र होते हैं और दर्शनों से आंख पवित्र होती है और चरणदाबने से और पंखा करने से हाथ पवित्र होते हैं और जलभरने से तमाम देह पवित्र होती है ॥ वच. भा. २ द. १९०—१३१ ॥

(समीक्षक) वाह! सेवा कराने की क्या युक्ति निकाली और कैसा अच्छा लालच दिया है जिस की इस पट्टी में आ कर विचारे अच्छे २ घर बार छोड़ कर सत्कर्मविहीन हो कर आप की सेवा में लग गये और गुरु के केवल (आप के) दर्शन करने जाने से पाव और हाथ चरण दबाने से और नेत्र दर्शन से पवित्र होना कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि जो शरीर जिस को तुम सेव्य मानते हो वह शरीर तो हाड मास रुधिर मूत्र विष्ठा से भरा है उस की सेवा से पवित्र कैसे हो सकेगा और मनु जी ने तो ऐसे कहा भी है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ १ ॥
मनु. अध्या. ५ श्लो. १०९ ॥

अर्थात् शरीर जल से बुद्धि ज्ञान से आत्मा विद्या और तप से मन सत्य से शुद्ध होता है· शरीर तो जिस से मल मूत्र करता रहता है वह चाहे गुरु का हो चाहे जिस का हो कभी जल के विना शुद्ध नही हो सक्ता और जब वह आप ही अशुद्ध है तो दूसरे सेवा करने वालो को कैसे शुद्ध कर सक्ता है।

व्यापकरूप ब्रह्म दीपक के समान है सब को चांदना दिखा रहा है चांदने में चोर चोरी करता है विषयी विषय करता है शराबी शराब पी रहा है पर यह किसी को कुछ नहीं कहता है तो ऐसे के नाम से जपने वा इष्ट बांधने से चौरासी नहीं छूटेगी. वच. भा. २ द. १९२—१३३ ॥

(समीक्षक) ब्रह्म व्यापक और दीपक के समान नहीं किन्तु सर्वव्यापक और दीपक को और सूर्य चन्द्रमादि जितने ज्योति हैं उन सब का प्रकाशक कहते तो ठीक था जो कहते हो चादने में चोर चोरी करता है और विषयी विषय करता है शराबी शराब पीता है पर वह किसी से कुछ नहीं कहता——सो आप को कुछ भी समझ होती तो जान लेते कि जो चोर चोरी करता है वह प्रकाश की सहायता से ही तो पकड़ा जाता है अन्धेरे में कभी नहीं पकड़ा जा सक्ता और जेलखाना भोगता है सो थोड़ा दण्ड है ? फिर तुम्हारा ब्रह्म को कुछ भी न करने वाला कहना कहां रहा और जो विषयी अन्यथा विषय भोग करता है क्या आतशकादि वा भगन्दरादि रोगों में फस कर नहीं मर जाता है क्या शराबियों के मुख पर कुत्ते नहीं मूतते क्या उन की दुर्दशा नहीं होती क्या वे गोली खा कर नहीं मर जाते है यह क्या दण्ड थोड़ा है फिर ऐसा कहना आप की सर्वथा भूल है कुछ तो विचारा होता कि शराबी को चोर को और विषयी को यह दण्ड कौन देता है कदापि राधास्वामी जी ने दिया हो तो वे निवारण कर सक्ते होंगे परन्तु वह औषधि विना न कभी कर सके और न वक्त के सतगुरु जी कर सकेंगे और औषधि उस ब्रह्म की बनाई हुई है अब जान लो कि दण्ड देना वा उस का निवारण करना उसी के हाथ है आप के नहीं और जिस के सब कुछ हाथ है उसी की आज्ञा पालना परम धर्म है ।

संत के वचन का अर्थ तो संत ही खूब जानते हैं ॥

वच. भा. २ द. २०३–१८६ ॥

(समीक्षक) मनघड़त अर्थ और मनघड़त शब्द आप जैसे सन्त ही जानते हैं विद्वान् नहीं ।

गुरमुख उस का नाम है जो सतगुर को मालिक कुल्ल समझे ॥ व. भा. २ द. २०७–१५० ॥

(समीक्षक) जब सतगुरु अपने शरीर का तो मालिक है ही नहीं फिर उस को मालिक कुल्ल समझाने का उपदेश करना भूल की बात है जो मालिक कुल्ल होते तो आप न मरते ।

बाहर की सफाई भली प्रकार और कुछ अन्तर में भी सफाई कर रहे हैं–आदि उन को विना सतगुर के बताये हुए नाम के जप तप संयम कुछ भी फायदा नहीं देगा ॥

वच. भा. २ द. २१८–१९२ ॥

(समीक्षक) बाहरी सफाई और भीतरी सफाई से आदमी सद्गति पासक्ता है परन्तु नाम चाहे सत्गुरु का दिया हो वा दूसरे का नाम से कुछ भी नहीं हो सक्ता जैसे चाहे नीम बाग का हो वा जंगल का उसको नीम २ कहते रहने से मुंह कभी कड़ुवा नहीं होगा——

जाहर में सन्तों का अकालमूर्त है पूजाकरने के वास्ते ॥

वच. भा. २ द. ३६–७५–४ ॥

(समीक्षक) जब एक दिन जन्मे और एक दिन मर गये फिर अकालमूर्त्ति कैसे हुए।

सन्तों के मत में वैराग्य की कुछ महिमा नहीं ॥

वच. भा. २ द. २१९–१६३ ॥

(समीक्षक) सन्तो के मत में वैराग्य की महिमा नहीं तो राग की होगी और विषयीजन अवश्य विषयो में रमण करते होंगे इसी से झुण्ड के झुण्ड स्त्रियो के पास रहते होंगे और वैराग्य को हाथ जोड़ कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि वैराग्य कोई देहधारी पदार्थ नहीं है सो ऐसा कर सके॰

बुरे से बुरा भी स्थान नाम से पवित्र हो सक्ता है जो नाम अपवित्रता से जाता रहा वह नाम नहीं ॥

वच. भा. २ द. २२० ॥

(समीक्षक) जो नाम से बुरे से बुरे स्थान पवित्र होते हैं तो सहज ही आगरे के तहारत तो नाम लेने से साफ़ हो जाते होंगे वाह २ विचारे महतर तो रोजगार विना रोते होंगे उन को पैसा कौन देता होगा——

जब से जीव पैदा हुआ है तब से काल इस के संग है-और अस्थुल हो गया ॥

वच. भा. २ द. २२७–१६७–२२३–१६७ ॥

(समीक्षक,) जीव कभी पैदा नही हुआ न होगा क्योंकि यह नित्य है और न यह कभी स्थूल हो सके॰

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः॥ गीता. अ. २ श्लो. २० ॥

नाम की जुगत संतों के हाथ भी नहीं लगी वह आप ही बनबैठे हैं॥ वच. भा. २ द. २२९-१७१ ॥

(समीक्षक) कहा तक सत्य छिपा रहै अन्त में निकल ही आया कि नाम की युक्ति इन के हाथ नही लगी और यह आप बन बैठे हैं नाम की उस परमात्मा की युक्ति इन के हाथ कैसे लगे इन्हो ने तो परमेश्वर को जाना ही नही यह तो आप बन बैठे है।

मालिक इस तरह गुप्त है जैसे काष्ठ में अग्नि और उन को नजर न आया जिस से नास्तिक हो गये॥

वच. भा. २ द. १७४ ॥

(समीक्षक) मालिक जैसे काष्ठ में अग्नि है वैसे नही है क्योंकि जहा काष्ठ के परमाणु है वहा अग्नि के परमाणु नही और जहा अग्नि के परमाणु हैं वहा काष्ठ के परमाणु नही परमेश्वर को जो ऐसा मानोगे तो वह कही है और कही नही है ऐसा हो जायगा इसलिये जैसा आप कहते हैं वैसा नही किन्तु सर्वव्यापक है आप को मालिक नजर नही आया इसलिये आप [राधास्वामीसृष्टसृष्टा] बनबैठे और जो नजर आता तो ऐसा कभी नही करते किन्तु जैसे और महात्माओ ने उसी को बडा रक्खा है वैसे आप भी उसी को बडा रखते और उसी का उपदेश करते अपना नही——

विद्यावान् गुरु से जीव के संशय दूर नहीं होता॥

वच. भा. २ द. २५८-१९९ ॥

(समीक्षक) विद्यावान् से संशय दूर नही होते तो मूर्ख से होते होगे यह कहना ऐसा है जैसे नेत्रवान् कुछ नही देख सक्ता है और अन्धा सब देखता है॰

मोक्ष

राधास्वामी जी कहते हैं कि रूह राधास्वामी जी पद से उतर कर इस तन में आकर ठहरी हुई है और तीन गुण और पांच तत्व और इन्द्रि और मन वगैरे में बन्ध गई है उन से छूटना मोक्ष है ॥ वच. भा. २ पृष्ठ १ ॥

(समीक्षक) जीवात्मा पञ्चभूतात्मक शरीर और इन्द्रियों और मन से बन्धा हुआ नहीं है किन्तु ये सब उस के आधीन हैं और आधीन होने से स्वतंत्र जीव को बन्धकारक नहीं हो सक्ते जो शरीर जीव को बन्ध कर सक्ता तो मृत्युसमय उस को निकलने न देता और बन्धकर रखता परन्तु ऐसा नहीं होसक्ता किन्तु जीवात्मा शरीर को छोड़ कर निकल ही जाता है १०इन्द्रियें मन के संयोग से और मन चैतन्य जीवात्मा के संयोग से कार्य करता है और जो आप तीन गुण और दश इन्द्रिये और मन से ही छूटना मोक्ष मानते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि जीव जब इन्द्रियों से छुट जायगा तब मोक्षसुख किस से भोगेगा इन्द्रियें द्वार हैं जिस से जीव सुख दुःख भोगता है इन से पृथक् कभी नहीं हो सक्ता जैसे अग्नि जब तक बनी रहेगी तब तक उस की उष्णता भी बनी रहेगी इसलिये जब तक जीव रहेगा तब तक इन्द्रिये और मन भी बने ही रहेंगे और जीव नित्य है इसलिये इन्द्रियादिकों का संयोग भी नित्य है आप के मतानुसार तो एक जीव जो अन्धा वधिर और गूंगा और पीनसवाला लंगडा टूटा आदि गुणों वाला मुक्त माना जायगा विचारशील पुरुष ऐसी आप की बातें कभी नहीं मानेंगे यह सब बातें आप की भ्रम हैं इन्द्रियों का अभाव कभी नहीं हो सक्ता देखिये अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषद् में लिखा है——

विज्ञानात्मा सह देवैश्च सर्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति ॥ चतुर्थ प्रश्न मन्त्र ११ ॥

अर्थ——हे (सोम्य) प्रियवर (यस्तु) (विज्ञानात्मा) विज्ञानस्वरूप जीवात्मा (सर्वैः, देवैः) सब विषयप्रकाशक इन्द्रियों सहित (सह) (यत्र) जिसमें ठहर रहा है

तथा (प्राणाः) पाच प्राण (भूतानि च) और पृथिव्यादि पाच भूत (सम्प्रतिष्ठन्ति) जिस में सम्यक् प्रकार से ठहरते हैं (तत् अक्षरम्) उस अविनाशी परमात्मा को (वेदयते) जानता है (सः) वह पूर्व कहे अनुसार (सर्वज्ञः) सब सत्यासत्य धर्माधर्म को जानता है और वह ज्ञानी शरीरछोडने पश्चात् भी (सर्वम्) सर्वव्याप्त परब्रह्म को प्राप्त हुआ मुक्त होता है महर्षि व्यासजी ने भी कहा है।

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १ ॥
भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ २ ॥
द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोतः ॥ ३ ॥
अ. ४ पाद. ४ सू. १०–११–१२ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १ ॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ २ ॥
कठो. अ. २ बल्ली ६ मं. १०–११ ॥

दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥
छान्दोग्योपनिषद् प्रपा० ७ ॥

अथ मुक्तिविषयः संक्षेपतः ॥

एवं परमेश्वरोपासनेनाविद्याऽधर्माचरणनिवारणाच्छुद्धविज्ञानधर्मानुष्ठानोन्नतिभ्यां जीवो मुक्तिं प्राप्नोतीति ॥ अथात्र योगशास्त्रस्य प्रमाणानि तद्यथा। अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥१॥ अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविछिन्नोदाराणाम् ॥ २ ॥ अनित्याशुचिदुःखाना-

त्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ३ ॥ दृक्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ४ ॥ सुखानुशयी रागः ॥ ५ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ६ ॥ स्वरसवाही विदुषोपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ७ ॥ अ० १ पा० २ सू० ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ ॥ तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ ८ ॥ अ० १ पा० २ सू० २५ ॥ तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ९ ॥ अ० १ पा० ३ सू० ४८ ॥ सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ १० ॥ अ० १ पा० ३ सू० ५३ ॥ तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥११॥ अ० १ पा० ४ सू० २६ ॥ पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ १२ ॥ अ० १ पा० ४ सू० ३४ ॥ अथ न्यायशास्त्रप्रमाणानि ॥ दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ १ ॥ बाधनालक्षणं दुःखमिति ॥ २ ॥ तदत्यन्तविमोक्षोपवर्गः ॥ ३ ॥ न्यायद० अ० १ आह्निक १ सू० २ । २१ । २२ ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार परमेश्वर की उपासना करके अविद्या आदि क्लेश तथा अधर्माचरण आदि दुष्टगुणों को निवारण कर के शुद्ध विज्ञान और धर्मादि शुभगुणों के आचरण से आत्मा की उन्नति कर के जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है अब इस विषय में प्रथम योगशास्त्र का प्रमाण लिखते हैं पूर्व लिखी हुई चित्त की पांच वृत्तियों को यथावत् रोकने और मोक्ष के साधन में सब दिन प्रवृत्त रहने से नीचे लिखे हुए पांच क्लेश नष्ट हो जाते हैं वे क्लेश ये हैं एक (अविद्या) दूसरा (अस्मिता) तीसरा (राग) चौथा (द्वेष) और पांचवां (अभिनिवेश) ॥ १ ॥ (अविद्या क्षेत्र०)

उन में से अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्याभाषणादि दोषों की माता अविद्या है जो कि मूढ जीवों को अन्धकार में फसा के जन्ममरणादि दुःखसागर में सदा डुबाती है। परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकों की सत्यविद्या से अविद्या (विच्छिन्न) अर्थात् छिन्नभिन्न होके (प्रसुप्ततनु) नष्ट हो जाती है तब वे जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं॥ २॥ अविद्या के लक्षण ये हैं (अनित्या) (अनित्य) अर्थात् कार्य्य (जो शरीर आदि स्थूल पदार्थ तथा लोक लोकान्तर में नित्यबुद्धि) तथा जो (नित्य) अर्थात् ईश्वर जीव जगत् का कारण क्रिया क्रियावान् गुण गुणी और धर्म धर्मी हैं इन नित्य पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध है इन में अनित्यबुद्धि का होना यह अविद्या का प्रथम भाग है तथा (अशुचि) मलमूत्र आदि के समुदाय दुर्गंधरूप मल से परिपूर्ण शरीर में पवित्रबुद्धि का करना तथा तलाव, बावरी, कुण्ड, कूंआ, और नदी, आदि में तीर्थ और पाप छुडाने की बुद्धि करना और उन का चरणामृत पीना एकादशी आदि मिथ्या व्रतो में भूख प्यास आदि दुःखो का सहना स्पर्श इन्द्रिय के भोग में अत्यंत प्रीति करना इत्यादि अशुद्ध पदार्थों को शुद्ध मानना और सत्यविद्या सत्यभाषण धर्म सत्सङ्ग परमेश्वर की उपासना जितेन्द्रियता सर्वोपकार करना सब से प्रेमभाव से वर्त्तना आदि शुद्ध व्यवहार और पदार्थों में अपवित्रबुद्धि करना यह अविद्या का दूसरा भाग है तथा दुःख में सुखबुद्धि अर्थात् विषयतृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, ईर्षा, द्वेष, आदि दुःखरूप व्यवहारों में सुख मिलने की आशा करना जितेन्द्रियता निष्काम शम संतोष विवेक प्रसन्नता प्रेम मित्रता आदि सुखरूप व्यवहारों में दुःखबुद्धि का करना यह अविद्या का तीसरा भाग है इसी प्रकार अनात्मा में आत्मबुद्धि अर्थात् जड में चेतनभाव और चेतन में जडभावना करना अविद्या का चतुर्थभाग है यह चार प्रकार की अविद्या संसार के अज्ञानी जीवो को बन्धन का हेतु होके उन को सदा नचाती रहती है परन्तु विद्या अर्थात् पूर्वोक्त अनित्य अशुचि दुःख और अनात्मा में अनित्य अपवित्रता दुःख और अनात्मबुद्धि का होना तथा नित्य शुचि सुख और आत्मा में नित्य पवित्रता सुख और आत्मबुद्धि करना यह चार प्रकार की विद्या है जब विद्या से अविद्या की निवृत्ति होती है तब बन्धन से छूट के जीव मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ३॥ (अस्मिता०) दूसरा क्लेश (अस्मिता) कहाता है अर्थात् जीव और बुद्धि को मिले के समान देखना अभिमान और अहङ्कार से अपने को बडा समझना इत्यादि व्यवहार को अस्मिता जानना जब सम्यक्विज्ञान से अभिमान आदि के नाश होने से इस की निवृत्ति हो जाती है तब गुणो के ग्रहण में रुचि होती है॥ ४॥ तीसरा (सुखानु०) राग अर्थात् जो २ सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते है

उन के संस्कार की स्मृति से जो तृष्णा के लोभसागर में बहना है इस का नाम राग है जब ऐसा ज्ञान मनुष्य को होता है कि सब संयोग वियोग संयोग वियोगान्त हैं अर्थात् वियोग के अंत में संयोग और संयोग के अंत में वियोग तथा वृद्धि के अंत में क्षय और क्षय के अंत में वृद्धि होती है तब इस की निवृत्ति हो जाती है ॥ ५ ॥ (दुःखानु०) चौथा द्वेष कहाता है ॥ अर्थात् जिस अर्थ का पूर्व अनुभव किया गया हो उस पर और उस के साधनो पर सदा क्रोधबुद्धि होना इस की निवृत्ति भी राग की निवृत्ति से ही होती है ॥ ६ ॥ (स्वरसवा०) पांचवा (अभिनिवेश) क्लेश है जो सब प्राणियों को नित्य आशा होती है कि हम सदैव शरीर के साथ बने रहैं अर्थात् कभी मरे नही सो पूर्वजन्म के अनुभव से होती है और इस से पूर्वजन्म भी सिद्ध होता है क्योंकि छोटे २ कृमि चींटी आदि को भी मरण का भय बराबर बना रहता है इसी से इस क्लेश को अभिनिवेश कहते हैं जो कि विद्वान् मूर्ख तथा क्षुद्र जंतुओं में भी बराबर दीख पडता है इस क्लेश की निवृत्ति उस समय होगी कि जब जीव परमेश्वर और प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण को नित्य और कार्य्यद्रव्य के संयोग वियोग को अनित्य जान लेगा इन क्लेशों की शांति से जीवो को मोक्षसुख की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ (तदभावात्०) अर्थात् जब अविद्यादि क्लेश दूर होके विद्यादि शुभगुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बन्धनों और दुःखों से छूट के मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ (तद्वैराग्या०) अर्थात् शोकरहित आदि सिद्धि से भी विरक्त होके सब क्लेशों और दोषों का बीज जो अविद्या है उस के नाश करने के लिये यथावत् प्रयत्न करे क्योंकि उस के नाश के विना मोक्ष कभी नही हो सक्ता ॥ ९ ॥ तथा (सत्वपुरुष०) अर्थात् सत्व जो बुद्धि पुरुष जो जीव इन दोनों की शुद्धि से मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १० ॥ (तदा विवेक०) जब सब दोषो से अलग होके ज्ञान की ओर आत्मा झुकता है तब कैवल्य मोक्षधर्म के संस्कार से चित्त परिपूर्ण हो जाता है तभी जीव को मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जब तक बन्धन के कामो में जीव फसताजाता है तबतक उसको मुक्ति प्राप्तहोना असंभव है । ११ । कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ०) अर्थात् कारण के सत्व रजो और तमोगुण और उन के सब कार्य्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् हो के स्वरूपप्रतिष्ठा जैसा जीव का तत्व है वैसा ही स्वाभाविक शक्ति और गुणो से युक्त हो के शुद्धस्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥ १२ ॥ अब मुक्तिविषय में गोतमाचार्य्य के कहे हुए न्यायशास्त्र के प्रमाण लिखते हैं (दुःख-जन्म०) जब मिथ्याज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती है तब जीव के सब दोष

नष्ट हो जाते हैं उस के पीछे (प्रवृत्ति०) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयासक्ति आदि की वासना सब दूर हो जाती है उस के नाश होने से (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नही होता उस के न होने से सब दु खों का अत्यंत अभाव हो जाता है दुःखो के अभाव से पूर्वोक्त परमानन्द मोक्ष में अर्थात् सब दिन के लिये परमात्मा के साथ आनंद ही आनंद भोगने को बाकी रह जाता है इसी का नाम मोक्ष है ॥ १ ॥ (बाधना०) सब प्रकार की बाधा अर्थात् इच्छाविघात और परतंत्रता का नाम दुःख है ।२। (तदत्यन्त०) फिर उस दुःख के अत्यंत अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिन के लिये परमानन्द प्राप्त होता है उसी सुख का नाम मोक्ष है ॥ ३ ॥

अथ वेदान्तशास्त्रस्य प्रमाणानि ॥

अभावं वादरिराह ह्येवम् ॥ १ ॥ भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ २ ॥ द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोतः ॥ ३ ॥ अ० ४ पा० ४ सू० १० । ११ । १२ ॥ यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥ बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १ ॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥ अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥२॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ॥ अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ ३ ॥ यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ॥ अथ मर्त्योमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ ४ ॥ कठो० अ० २ वल्ली० ६ मं० १० । ११ । १४ । १५ ॥ दैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषाᳬ सर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वाᳬश्च लोकानाप्नोति सर्वाᳬश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य जानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब व्यासोक्त वेदांतदर्शन और उपनिषदों में जो मुक्ति का स्वरूप और लक्षण लिखे हैं सो आगे लिखते हैं (अभावं०) व्यास जी के पिता जो बादरि आचार्य थे उन का मुक्तिविषय में ऐसा मत है कि जब जीव मुक्तदशा को प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मन से परमेश्वर के साथ परमानन्द मोक्ष में रहता है और इन दोनों से भिन्न इन्द्रियादि पदार्थों का अभाव हो जाता है ॥ १ ॥ तथा (भावं जैमिनि०) इसी विषय में व्यास जी के मुख्य शिष्य जो जैमिनि थे उनका ऐसा मत है कि जैसे मोक्ष में मन रहता है वैसे ही शुद्ध संकल्पमय शरीर तथा प्राणादि और इन्द्रियों की शुद्धशक्ति भी बराबर बनी रहती है क्योंकि उपनिषद् में (स एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवति) इत्यादि वचनों का प्रमाण है कि मुक्तजीव संकल्पमात्र से ही दिव्यशरीर रच लेता है और इच्छामात्र ही से शीघ्र छोड़ भी देता है और शुद्धज्ञान का सदा प्रकाश बना रहता है ॥ २ ॥ (द्वादशाह०) इस मुक्तिविषय में बादरायण जो व्यास जी थे उन का ऐसा मत है कि मुक्ति में भाव और अभाव दोनों ही बने रहते हैं अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषों का सर्वथा अभाव हो जाता है और परमानंद ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्यगुणों का भाव बना रहता है इस में दृष्टान्त भी दिया है कि जैसे वानप्रस्थ आश्रम में बारह दिन का प्राजापत्यादि व्रत करना होता है उस में थोड़ा भोजन करने से क्षुधा का थोड़ा अभाव और पूर्ण भोजन न करने से क्षुधा का कुछ भाव भी बना रहता है इसी प्रकार मोक्ष में भी पूर्वोक्त रीति से भाव और अभाव समझ लेना इत्यादि निरूपण मुक्ति का वेदांतशास्त्र में किया है ॥ ३ ॥ अब मुक्तिविषय में उपनिषद्कारों का जो मत है सो भी आगे लिखते हैं कि (यदा पंचाव०) अर्थात् जब मन के सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय परमेश्वर में स्थिर होके उसी में सदा रमण करती हैं और जब बुद्धि भी ज्ञान से विरुद्ध चेष्टा नहीं करती उसी को परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं ॥ १ ॥ (तां योग०) उसी गति अर्थात् इन्द्रियों की शुद्धि और स्थिरता को विद्वान् लोग योग की धारणा मानते हैं जब मनुष्य उपासनायोग से परमेश्वर को प्राप्त होके प्रमादरहित होता है तभी जानो कि वह मोक्ष को प्राप्त हुआ वह उपासनायोग कैसा है कि प्रभव अर्थात् शुद्धि और सत्य गुणों का प्रकाश करनेवाला तथा (अप्ययः) अर्थात् सब अशुद्धि दोषों और असत्य गुणों का नाश करनेवाला है इसलिये केवल उपासनायोग ही मुक्ति का साधन है ॥ २ ॥ (यदा सर्वे०) जब इस मनुष्य का हृदय सब बुरे कामों से अलग हो के शुद्ध हो जाता है तभी वह अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होके

आनन्दयुक्त होता है (प्र०) क्या वह मोक्षपद कहीं स्थानान्तर वा पदार्थविशेष है क्या वह किसी एकही जगह में है वा सब जगह में (उत्तर) नहीं ब्रह्म जो सर्वत्र व्यापक हो रहा है वही मोक्षपद कहाता है और मुक्तपुरुष उसी मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ तथा (यदा सर्वे०) जब जीव की अविद्यादि बन्धन की सब गाठें छिन्न भिन्न हो के टूट जाती हैं तभी वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ (प्र०) जब मोक्ष में शरीर और इन्द्रियां नहीं रहती तब वह जीवात्मा व्यवहार को कैसे जानता और देख सकता (उत्तर) (दैवेन०) वह जीव शुद्ध इन्द्रिय और शुद्ध मन से इन आनंद-रूप कामों को देखता और भोक्ता भया उसमें सदा रमण करता है क्योंकि उस का मन और इन्द्रियां प्रकाशस्वरूप हो जाती हैं ॥ ५ ॥ (प्र०) वह मुक्तजीव सब सृष्टि में घूमता है अथवा कहीं एकही ठिकाने बैठा रहता है (उ०) (य एते ब्रह्मलोके०) जो मुक्तपुरुष होते हैं वे ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वर को प्राप्त होके और सब के आ-त्मा परमेश्वर की उपासना करते हुए उसी के आश्रय से रहते हैं इसी कारण से उन का जाना आना सब लोक लोकान्तरों में होता है उन के लिये कहीं रुकावट नहीं रहती और उन के सब काम पूर्ण हो जाते हैं कोई काम अपूर्ण नहीं रहता इसलिये जो मनुष्य पूर्वोक्तरीति से परमेश्वर को सब का आत्मा जान के उस की उपासना करता है वह अपनी संपूर्ण कामनाओं को प्राप्त होता है यह बात प्रजापति परमेश्वर सब जीवों के लिये वेदों में बताता है ॥ ६ ॥

इति ॥

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
५	२७	०	अथ० १६-२४-२६ मं०-८। अ०२
६	४	सोऽदार	सोचर
६	५	०	कैवल्य
६	६	०	मनु० अ० १२ श्लो० १२३
१५	१४	ह्वे	हुवे
१६	८	आ	आप
३२	१४	राजन्या	राजन्या
३९	६	नेतराणि	नो इतराणि
३९	११	महार्षियों	महर्षियों
४०	५	त्मेश्वरान्	त्मेश्वरौ
४६	८	से	०
४६	६	०	भाईबन्धु है विद्या हो